* ओ३म् *

॥ वेदतत्त्व प्रकाश ॥

ओङ्कार निर्णय

जिसको

श्रीमान् पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ

भाष्यकार छान्दोग्योपनिषद्, उपदेशक

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा

पञ्जाब ने रचा ।

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के स्थापित किये

आर्य्यपुस्तक प्रचार विभाग के अधिष्ठाता

म० कृष्ण जी बी०ए० द्वारा प्रकाशित

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध में

सद्धर्म-प्रचारक यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी

में मुद्रित ।

द्वितीयवार १००० } संवत् १९६८ वि० । सन् १९११ ई० { मूल्य ।-) आना

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ
शङ्काएं	१
समाधान	१
मन्त्र में गुप्त ओंकार	२
वि+और अन शब्द की व्याख्या	४
व्योमन् शब्द का निर्विभक्तिक होने का कारण	५
वेदों में ओंकार शब्द का पाठ	६
वेदों में जितने मन्त्र हैं उन से द्विगुण ओंकार शब्द का पाठ	७
ओं शब्द का अन्वय	९
मन्त्रों के आदि में ओम् शब्द	१०
ऐतरेय का प्रमाण	१२
शतपथ का प्रमाण	१४
गोपथ का प्रमाण	१५
ताण्ड्य ब्राह्मण में ओम् शब्द	१७
ईशादिउपनिषद्	२०
ओंकार सम्बन्धी उपनिषद् वचनों पर शंका	२४
शंका समाधान	२६
दो आख्यायिकाएं	२९
सूर्य्यादिक में ईश्वरोपासना निषेध	३१
ओंकार का गूढ़ तात्पर्य्य	३५
ओंकार शब्द की रचना का परम गूढ़ भाव	३७

विषय	पृष्ठ
अकार और पाणिनि	३७
अकार और संस्कृत लिपि	३८
ओम् शब्द और संस्कृत लिपि	३८
ओंकार और ऋषियों का तात्पर्य	३९
मकार और संस्कृत लिपि	४०
मकार और तन्त्र	४२
उकार और जीव	४३
अन्य नामों की अपेक्षा ओंकार की श्रेष्ठता	४४
अव्यय ओंकार	४४
ओम् शब्द का स्वीकार अर्थ	४५
मन्त्र के आदि अन्त में ओम् शब्द	४६
जीवन के आदि अन्त में ओम् शब्द का विधान	४८
योग और ओम् शब्द	५०
पुराण और ओम् शब्द	५४
देवी भागवत और ओंकार	५७
तन्त्र और ओम् शब्द	५९
मद्यादि और कुलार्णव तन्त्र	६३
नाम और नामी	६४
अन्य नाम	६८
ओंकार शब्द की सिद्धि	६८
सब धर्म्मों में ओम् शब्द	७१
ओंकार स्तुति	७१

॥ ओ३म् ॥

वेदतत्त्व प्रकाश।

शङ्काएं।

प्रथम ओम् के विषय में ये शंकाएं होती हैं कि वेदों में ओम् शब्द का वर्णन कहां है ? । वेदों के पढ़ने से विदित होता है कि अग्नि, वायु, इन्द्र, सविता, यम, अर्यमा, मरुत् आदिक ही ब्रह्म के नाम हैं, ओंकार नहीं, क्योंकि इसका पाठ चारों वेदों में कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद अग्नि शब्द से, यजुर्वेद इष शब्द से, सामवेद अग्नि शब्द से और अथर्ववेद ये शब्द से प्रारम्भ हुआ है। यदि ब्रह्म का परम प्रिय नाम ओम् होता तो वेदों में भी प्रथम उस का आना उचित था। अतः यह ईश्वर का नाम नहीं है ऐसी प्रतीति होती है। २–यह भी सुनते हैं कि ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य, गोपथ, जो क्रमशः चारों वेदों के चार ब्राह्मण हैं उन में भी ओंकार शब्द का विशेष वर्णन नहीं है और ३–जिस प्रकार सामगान में "हाई" "हावू" "ओहोई" "आ" "ऊ" प्रभृति शब्द केवल विश्राम के लिये आते हैं उसका कुछ अर्थ नहीं होता है और जो सामस्तोभ नाम से प्रसिद्ध हैं, वैसा ही यह ओंकार भी पूर्व समय में एक सामस्तोभ था। गीत में विश्राम के लिये उसका उच्चारण करते थे जैसे आज कल भी 'हो' 'ओ' 'हरे' आदि शब्द असंबद्ध लगाकर भजन गाते हैं। पीछे लोगों ने इसको पवित्र और ईश्वर का नाम मानलिया और मन माने इस शब्द के बहुत से अर्थ किये ऐसा भी कोई २ कहते हैं।

समाधान।

ओम् क्रतोस्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर।

यजु० ४०। १५ ॥ ओ३म् खं ब्रह्म ॥ यजु० ४०। १७ ॥

यहां देखिये यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में साक्षात् "ओम्" शब्द का पाठ आया है पुनः आप कैसे कहते हो कि वेदों में ओंकार शब्द का पाठ नहीं है।

शंका–यजुर्वेद के ४० वें अध्याय को कतिपय विद्वान् उपनिषदों में ही गिनते हैं। वे कहते हैं कि सम्पूर्ण यजुर्वेदों के मन्त्रों का विनियोग सर्वत्र कहा गया है

परन्तु इस अध्याय का विनियोग किसी ग्रन्थ में उक्त नहीं है और जिसका विनियोग नहीं वह वेद नहीं ऐसा मीमांसा का मत है इस हेतु से इस को हम वेद नहीं कह सकते। इस कारण प्रथम इस अध्याय को छोड़ कर वेदों के अन्य स्थानों से ओम् शब्द का उदाहरण वर्णन करें, जिस से कि अशेष सन्देह दूर हो जांय।

उत्तर—एवमस्तु। आप लोग सावधान होकर सुनें।

ऋचोअक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वेनिषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ ऋग्० १। सू० १६४। मंत्र ३९॥

इस मन्त्र को ले यास्काचार्य्य निरुक्त ग्रन्थ में कई एक आचार्य्यों के सिद्धान्त प्रकाशित करते हैं। यथा—

कतमत् तदेतदक्षरम् ? ओमित्येषा वागिति शाकपूणिः॥ निरु० अ० १३। १०॥

इस मन्त्र में जो "अक्षर" शब्द आया है उसका अर्थ क्या है, ? (तत्+एतद्) वह यह (कतमद्+अक्षरम्) कौनसा अक्षर है ? इतनी शंका कर शाकपूणि आचार्य कहते हैं कि (ओम्+इति) ओम् (एषा+वाग्) यह वाणी है अर्थात् मन्त्र में जो "अक्षर" शब्द आया है वह ओम् शब्द का वाचक है।

शंका—इस में साक्षात् ओंकार शब्द तो नहीं फिर शाकपूणि आचार्य का कथन कैसे हम मानेंगे? और जब निरुक्त में ही तीन आचार्य तीन अर्थ करते हैं, तब तो और भी सन्देह होता है। इस हेतु इस से शंका दूर नहीं होती अन्य उदाहरण कहें।

समाधान—अच्छा इस से यह तो अवश्य सिद्ध होता है कि यास्काचार्य के पहले से ही इसका प्रचार था क्यों कि ये शाकपूणि आचार्य का व्याख्यान अपने ग्रन्थ में देते हैं अतः शाकपूणि इन की दृष्टि में प्राचीन हैं।

मन्त्र में गुप्त ओंकार।

अब इसी मन्त्र में गुप्त रूप से ओंकार शब्द विद्यमान है सो देखिये। मन्त्र में "व्योमन्" शब्द है। इस में "वि+ओम्+अन्

ये तीन पद हैं। "वि" और "अन्" शब्द के बीच में ओम् शब्द है। इस सम्पूर्ण मन्त्र का अब अर्थ सुनिये। मन्त्र के पद ये हैं—

ऋच:। अक्षरे। परमे। व्योमन्। यस्मिन्। देवा: अधि। विश्वे। निषेदु:। य:। तद्। न। वेद। किम्। ऋचा। करिष्यति। ये। इत्। तद्। विदु। ते। इमे। समासते॥

अर्थ–(ऋच:) ऋग्वेद के सारभूत (यस्मिन्) जिस (अक्षरे) क्षर=नाश, उस से रहित (परमे) परम=महान् (व्योमन्=वि+ओम्+अन्) वि=विशिष्टा माया प्रकृति। ओम्=परमेश्वर। अन्=जीवात्मा, इन तीनों में (विश्वे-देवा:) सम्पूर्ण विश्व विविध ब्रह्माण्ड सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादि और प्राण सहित सकल इन्द्रिय (अधिनिषेदु:) निविष्ट=समाये हुए हैं (य:) जो पुरुष (तत्) उस व्योमन् (वि+ओम्+अन्) को (न वेद) नहीं जानता है वह (ऋचा) ऋग्वेद से (किंकरिष्यति) क्या करेगा। (ये) जो विद्वान् (तत्+इत्) इन ही तीनों को (विदु:) जानते हैं (ते+इमे) वे ये विद्वान् (समासते) जगत् में अच्छे प्रकार स्थिति लाभ करते हैं और अन्त में ब्रह्म को पाते हैं।

प्रकृति, जीव और ब्रह्म ये तीनों अक्षर हैं क्यों कि इन का विनाश नहीं होता। और ये तीनों ही महान् हैं इस हेतु 'परम' कहे गये हैं और ब्रह्म में तो यह सारा संसार है। प्रकृति के ये सब कार्य ही हैं, जीवात्मा के आश्रय से ही प्राण सहित सब इन्द्रिय कार्य्य कर सकते हैं। इस हेतु कहा गया है कि इन तीनों में ही (विश्वे देवा अधिनिषेदु:) सब सूर्यादि देव निवास करते हैं। वेद इन ही तीनों का वर्णन करते हैं। इस हेतु वेदों के ये ही तीन यथार्थ सारभूत पदार्थ हैं और इन ही तीनों को जो नहीं जानता है वह वास्तव में वेदों को नहीं जानता है। केवल मन्त्रों के कण्ठस्थ करने से क्या लाभ हो सकता है? जैसे परमात्मा सब के मध्य में गुप्त रीति से सुविराजमान है वैसा ही यहां पर भी "वि" और "अन्" शब्द के मध्य में ईश्वर वाचक "ओम्" शब्द सुशोभित है क्योंकि उपनिषदों में कहा गया है।

अदृश्यमानःपुरुषोऽन्तरात्मा । सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । कठ ६ । १७ ॥

वह अन्तर्यामी परमात्मा सब के हृदय में विराजता है ।

वि+और अन् शब्द की व्याख्या ।

शंका—वि और अन् शब्द से प्रकृति और जीव अर्थ कैसे होता है ?

उत्तर—अन् शब्द का अर्थ जीव प्रत्यक्ष है क्योंकि (अनिति, प्राणिति, जीवतीति=अन) अन् धातुका अर्थ जीना है । जीव धातुका जो अर्थ है वही अर्थ अन् का भी है अतः जीव और अन् शब्द एक ही अर्थको दिखलाते हैं और इसी अन् में 'प्र' उपसर्ग जोड़ने से प्राण शब्द बनता है इसी प्रकार अप+अन=अपान । सम+अन=समान । उद्+आ+अन=उदान । वि+आ+अन= व्यान् । भेद इतना है कि अन् शब्द में नकार हल् है । सो अन् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर हलन्त अन शब्द बनता है; अन और अन में कोई भेद नहीं है । ऐसे प्रयोग संस्कृत में बहुत आते हैं जैसे "तज्जलान्" यह छान्दोग्योपनिषद्, तृतीय प्रपाठक चतुर्दशखण्ड, प्रथम प्रवाक का वचन है । इस में तत्+ज+ल+अन्" शब्द है । यहां पर भी अन धातु से क्विप् प्रत्यय ही है । अतः अन् शब्द का अर्थ जीवात्मा सिद्ध हुआ और ओम् शब्द का अर्थ परमात्मा प्रसिद्ध ही है । अब रह गया 'वि' शब्द । फलित से ही 'वि' शब्द का अर्थ प्रकृति निकलजाता है क्योंकि परमात्मा जीवात्मा वाचक शब्द इस में विद्यमान ही है । अतः 'वि' शब्द का अर्थ शेष प्रकृति के अतिरिक्त अन्य क्या होगा क्योंकि व्याकरण का एक नियम है कि:—

सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैवग्रहणम् ॥
परिभाषा १११ ॥

यहां इस हेतु परमात्मा जीवात्मा वाचक ओम्+अन् शब्द के साथ पठित 'वि' शब्द का प्रकृति ही अर्थ होगा, अन्य नहीं ।

द्वितीय अर्थ ।

अथवा व्योमन् शब्द में वि+ओम्+अन् जो तीन शब्द हैं उन में से (विशेषेण+अनिति प्राणयति जीवान् यः स व्यन्) व्यन् (वि+अन्) ओम्

शब्द का विशेषण भी हो सकता है। जो ओम् ब्रह्म सब प्रकार से जीवों को जीवित कर रहा वह व्यन् है। इस प्रकार इसके अनेक अर्थ होंगे।

अब यह सुनिये, यास्काचार्य ने भी इस के तीन ही अर्थ दिखलाये हैं। ब्रह्म, जीव और आदित्य इन तीनों पदार्थों में मन्त्र घटता है। आदित्य पद से प्रकृति का ग्रहण होता है, इस से भी सिद्ध होता है कि यह मंत्र विशेष कर तीनों पदार्थों का वर्णन करता है। इसलिये "व्योमन्" शब्द में तीन पद हैं यह सूचित होता है।

व्योमन् शब्द का निर्विभक्तिक होने का कारण।

आप लोग यह भी जानते हैं कि "व्योमन्" शब्द में विभक्ति नहीं है। उस का लोप हो गया है। "व्योमन्" वेदों में जहां २ आता है वहां २ प्रायः विभक्ति का लोप ही आप देखेंगे। क्यों? मध्यगत ओम् शब्द अव्यय है। अतः उस के योग से वे दोनों भी अव्ययवत् ही प्रयुक्त हुए हैं यथाः—

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसा ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति "परमे व्योमन्" अथर्व० ५ ॥ १७ ॥ ६ ॥

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः। अन्वागन्ता यजमानःस्वस्ति तं स्म जानीत "परमे व्योमन्" अथर्व० ॥ ६ ॥ १२३ ॥ १ ॥

यद्देवा देवान् हविषा यजन्ता मर्त्यान् मनसा मर्त्येन। मदेम तत्र "परमे व्योमन्" पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य। अथर्व। ७। ५ ॥ ३ ॥

हमने आप लोगों के लिये केवल तीन उदाहरण दिये हैं, चारों वेदों में यह "परमेव्योमन्" शब्द अनेक वार आया है। वहां २ सर्वत्र ही प्रायः सप्तमी का लोप देखते हैं। महर्षि पाणिनि का जो यह—

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः। ७। १। ३९ ॥

सूत्र है वह वेद में सुप् की जगह सु और लोप आदि विधान करने का है सो केवल व्योमन् शब्द के लिये ही नहीं। यह सामान्य सूत्र है। तब क्या कारण है कि परमेव्योमन् जहां जहां आया है वहां वहां प्रायः सप्तमी का लोप ही देखते हैं। इस से वेद का कुछ गूढ़ तात्पर्य प्रतीत होता है । वेद का तात्पर्य अत्यन्त गूढ़ है। लाखों में कोई २ जानते हैं । इस लिये यह कहना कि वेदो में "ओम्" शब्द नहीं है सो ठीक नहीं। जैसे प्रकृति पुरुष के मध्य में ही ब्रह्म विराजमान है परन्तु किसी को सूझता नहीं इसी प्रकार "ओम्" शब्द सब वेदों में है परन्तु मनुष्यों को दीखता नहीं।

वेदों में ओङ्कार शब्द का पाठ ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ऋग् मण्डल १। सूक्त ३।
मन्त्र ७ ॥

पद–ओमासः। चर्षणीधृतः। विश्वे। देवासः। आ। गत। दाश्वांसः। दाशुषः। सुतम्।

अर्थ–प्रथम यहां यह जानना चाहिये कि (ओमासः) यह समास किया हुआ पद है। "ओम्×आसः" ये दो पद हैं "ओम्" नाम ब्रह्म का है आस् का अर्थ "समीप बैठने वाले" का है। अर्थात् ब्रह्म के समीप में बैठने वाले ब्रह्मज्ञानी।

अब सम्पूर्ण का अर्थ यह है (विश्वे देवासः) हे सकल विद्वानो! (दाशुषः) सत्कार करने वाले मेरे गृह पर (सुतम्) सोमरसयुत विविध प्रकार के पदार्थों को ग्रहण के लिये (आगत) आप लोग कृपा कर के आवें, आप लोग कैसे हैं? (ओमासः) ओम्=ब्रह्म के निकट में (आसः) बैठने वाले अर्थात् ब्रह्म के तत्त्व को जानने वाले, जिस लिये आप ओमास=ब्रह्म-तत्त्व वेत्ता हैं अतः मेरे गृह को भी सुशोभित करें। फिर आप कैसे हैं। (चर्षणीधृतः) चर्षणी=प्रजाओं को धृतः=धारण पोषण करने वाले भी आप हैं। अतः मुझे भी अपने उपदेशों से धारण करें। पुनः आप कैसे हैं?

(दाश्वांसः) विविध विज्ञान के देने वाले हैं। यहां पर देखिये "ओम्" शब्द प्रत्यक्ष ही है। पुनः

मनो जूतिर्जुषता माज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्ताम् ओम् प्रतिष्ठ। यजुः। २। १३

मनः। जूतिः। जुषताम्। आज्यस्य। बृहस्पतिः। यज्ञम्। इमम्। तनोतु। अरिष्टम्। यज्ञम्। सम्। इमम्। दधातु। विश्वे। देवासः। इह। मादयन्ताम्। ओम्। प्रतिष्ठ।

अर्थ—(जूतिः) अतिगमनशील वेगवान् (मनः) मन (आज्यस्य) सर्वत्र व्यापक ब्रह्म की (जुषताम्) सेवा करे और (बृहस्पतिः) बृहत्=वेदों के अधिपति वह परमेश्वर मेरे (इमम्+यज्ञम्) इस यज्ञ को (अरिष्टम्) निरुपद्रव छिद्ररहित करे। और वह ईश्वर (इमम्+यज्ञम्) मेरे इस यज्ञ को (सम्+दधातु) अच्छे प्रकार धारण पोषण करे। और (विश्वे) सकल आए हुए (देवासः) विद्वान् गण (इह) इस यज्ञ में (मादयन्ताम्) आनन्द भोग करें (ओम्) हे ईश्वर! (प्रतिष्ठ) आप मेरे हृदय में प्रतिष्ठित होवें। देखो इस मन्त्र में भी साक्षात् ओम् शब्द का पाठ आया है।

वेदों में जितने मन्त्र हैं उन से द्विगुण ओंकार शब्द का पाठ।

आप लोगों ने यह कहा है कि "अग्नि, वायु, इन्द्र आदिक ही शब्द ब्रह्म के प्रिय नाम प्रतीत होते हैं क्योंकि वेदों में इन ही का पाठ है ओङ्कार का नहीं" यह भ्रम केवल वेदों के न जानने से ही है। वेदों के जितने मन्त्र हैं उन से द्विगुण ओङ्कार शब्द आया है। उस को ध्यान देकर विचारिये। महर्षि पाणिनि कहते हैं कि–

प्रणवष्टेः ८। २। ८९॥

यज्ञकर्मणि टे रोमित्यादेशः स्यात् । अपां रेतांसि जिन्वतोम् ॥

जब वैदिक मन्त्र यज्ञ में पढ़े जायेंगे तो किस प्रकार से पढ़े जायेंगे ! सब मन्त्र के "टि" की जगह में "ओम्" शब्द हो जायगा । "टि" यह व्याकरण की एक संज्ञा है । यदि उस अन्तिम स्वरवर्ण के आगे व्यंजन वर्ण भी हो तो दोनों की "टि" संज्ञा हो जायगी (अचोऽन्त्यादि टि) । उदाहरण से यह विस्पष्ट होगा ।

"अपां रेतांसि जिन्वति"

यह वेद का मन्त्र है । इस का अन्तिम स्वर वर्ण कौन है ? "ति" में इकार अन्तिम स्वर है । अतः इकार के स्थान में "ओम्" यह आदेश हो जायगा अर्थात् "जिन्वति"! के स्थान में "जिन्वतोम्" हो जायगा । इसी प्रकारः—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् । ऋग्वेद १ । १ । ॥

इस मन्त्र में अन्तिम स्वर "धातमम्" के मकार में अकार है और इस अकार से परे व्यंजन वर्ण मकार है इन दोनों के स्थान में "ओम्" यह पद आदेश हो जायगा अर्थात् "रत्नधातमम्" इस के स्थान में "रत्नधातमोम्" हो जायगा। इसी प्रकार आप समझें जितने मन्त्र वेद के हैं उन के अन्तिम "टि" ओम् ही है । इस से सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र हैं उतने बार ओङ्कार शब्द का पाठ अन्त में है इस से यह भी जानें कि यह ओङ्कार मन्त्र के अन्तर्गत है मन्त्र से भिन्न नहीं अर्थात् ओम् शब्द मन्त्र के अन्त में नहीं लगाया जाता किन्तु प्रत्येक मन्त्र का जो अन्तिम "टि" है वह ओम् स्वरूप है ।

शङ्का—वेदों में इस प्रकार ओम् शब्द का पाठ तो कहीं नहीं देखते हैं । ज्ञात होता है कि जिस समय यज्ञ का बहुत प्रचार था उस समय याज्ञिक लोगों ने वेदों को वैसा ही पढ़ना आरम्भ किया होगा । तत्पश्चात् वैयाकरण पाणिनि ने भी वैसा ही सूत्र रच दिया ।

यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि याज्ञिक पुरुष वेदों में कोई शब्द मिला नहीं सकते । हां अन्य शब्दों को ऊपर से जोड़ गा सकते हैं । जैसे आज कल

तुलसीदास के रामायण को जब गाते हैं तो "रामा भजु रामा" "जय २ राम हरे" इत्यादि शब्द विश्राम के लिये जोड़ कर गाते हैं परन्तु किसी चौपाई वा दोहे के किसी अक्षर को मिटा उस की जगह रामा भजु रामा आदिक शब्द लगा कर नहीं गाते। वेद के मन्त्रों के अक्षर मिटा उन की जगह में ओम् शब्द जोड़ देते हैं इस से तो यह विस्पष्ट प्रतीत होता है कि ओम् शब्द वेद का एक अवयव ही है। इस को अच्छे प्रकार विचारिये अब यह देखिये कि ब्रह्मवाणी को अन्यथा कोई भी नहीं कर सकता। अतः ओम् शब्द का उपदेश वेद के साथ २ किया गया कि प्रत्येक मन्त्र का अन्तिम "टि" ओम् ही है ऐसा जानिये यही अनादि संकेत है।

जिस हेतु अनादि काल से यह संकेत चला आता है और यह एक सार्वत्रिक नियम है इस हेतु मन्त्रों के अन्त में लिखा नहीं रहता। ब्रह्मचारी से एक बार कह दिया गया कि वेद के प्रत्येक मन्त्र के "टि" को ओम् जानो। पुनः पुनः लिखने कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह सार्वत्रिक नियम है बालकों के अध्यापन के समय इस की आवश्यकता भी नहीं क्योंकि उन को प्रथम मन्त्रों का बोध होना चाहिये पश्चात् अर्थ का और तत्पश्चात् सम्पूर्ण वेदों के मुख्य तात्पर्य का।

शङ्का—यह तो बोध हो गया कि जितने मन्त्र हैं उतने बार ओङ्कार शब्द का पाठ है। परन्तु अब कृपया यह बतलावें कि वेदों का जब अर्थ करते हैं तब तो "ओम्" शब्द का अन्वय अर्थ कुछ भी नहीं करते फिर "ओम्" शब्द तो निरर्थक ही प्रतीत होता है।

ओं शब्द का अन्वय

उत्तर—इस का गूढ़ तात्पर्य यह है सुनिये। वेद का अन्तिम अभिप्राय केवल ब्रह्म से है। अन्य से नहीं। इस गूढ़ आशय को दर्शाने के लिये प्रत्येक मन्त्र के अन्त में "ओम्" शब्द का पाठ होता है। इसी विषय को कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने अपने वेदान्त सूत्र में कहा है देखो—

तत्तु समन्वयात्। वेदान्तसूत्र ३। अ० १ पा० । १॥

(तत्+तु) वही ब्रह्म सम्पूर्ण वेदों का प्रतिपाद्य विषय है अर्थात् उसी ब्रह्म को वेद गाता है क्योंकि (समन्वयात्) जैसे ईश्वर का सम्बन्ध

सम्पूर्ण विश्व से है वैसे ही सम्पूर्ण वेदों के मन्त्रों से साक्षात् अथवा परम्परा से है । अतः साक्षात् वा परम्परया सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य उसी ब्रह्म से है ऐसा जानिये । इस भाव को प्रकट करने की यह विधि अनादि काल से चली आती है । इस हेतु आपने जो कहा था कि वेदों में "ओम्" शब्द का पाठ नहीं है, यह केवल भ्रम मात्र है ।

मन्त्रों के आदि में ओं शब्द ।

अब पुनः यह देखिये, मन्त्रों के प्रारम्भ में भी प्रथम "ओम्" शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥

मनु० ॥ २ । ७४ ॥

अर्थ-(ब्रह्मणः) वेद की (आदौ) आदि में (च) और (अन्ते) अन्त में (प्रणवम्+कुर्यात्) ओङ्कार पढ़ना चाहिये । यदि वेद के आदि अन्त में ओङ्कार शब्द का उच्चारण न किया जाय तो दोष होगा, सो आगे कहते हैं (पूर्वम्) मन्त्रोच्चारण के प्रथम (अनोंकृतम्) ओङ्कार नहीं किया जाय तो (स्रवति) उस का फल धीरे २ नष्ट हो जाता है (परस्तात्+च) और अन्त में यदि ओङ्कार उच्चारण न करें तो (विशीर्यते) वह पाठकर्ता स्थिति को नहीं पाता अर्थात् वेद के आदि अन्त में ओङ्कार शब्द का उच्चारण करना आवश्यक है । महर्षि पाणिनि जी कहते हैं किः—

ओमभ्यादाने ॥ ८ । २ । ८७ ॥

ओम् शब्दस्य प्लुतः स्यादारम्भे । ओ३म् अग्निमीले पुरोहितम् ॥

आरम्भ में "ओम्" शब्द का प्लुत उच्चारण होता है अर्थात् जब यह "ओम्" शब्द किसी मन्त्र के आदि में पढ़ा जायगा तो "ओम्" शब्द का ओकार प्लुत हो जायगा प्लुत त्रैमात्रिक होता है । इसी हेतु ओके परे ३ का अङ्क लिखते हैं । अब आप मन में विचार करो कि मनु और पाणिनि कब हुए जब येही लोग इसी नियम को गाते आते हैं तब इस में कैसे भ्रम हो

सकता। धर्म शास्त्र में कदाचित् सन्देह हो सक्ता है कि किसी सम्प्रदायी ने यह श्लोक मिलाया हो, परन्तु व्याकरण में यह सन्देह नहीं हो सकता। इस से यह सिद्ध हुआ कि वेदों के जितने मन्त्र हैं उन से द्विगुण ओङ्कार शब्द वेद में हैं। और इन्द्र आदि शब्दों की अपेक्षा ओङ्कार शब्द का ही पाठ बहुत है।

पुनः पर्य्यालोचना और अन्वेषण कीजिये सामवेद के गाने में पांच विभाग होते हैं जिन को विभक्ति वा भक्ति संस्कृत में कहते हैं उन पांचों विभागों के नाम १ हिङ्कार, २ प्रस्ताव, ३ उद्गीथ, ४ प्रतिहार, और ५ निधन हैं।

उद्गीथ विभाग में प्रधानतया ओङ्कार का ही गान होता है। अब इन पांचों विभक्तियों की आज्ञा वेदों में पाई जाती है। देखोः—

तस्मा उद्यन् सूर्यो हिङ्करोति। प्रसङ्गवः प्रस्तौति ॥४॥ मध्यन्दिन उद्गायति। अपराह्णः प्रतिहरति। अस्तं यन्निधनम् ॥ अथर्व वेद कां० ९। सूक्त ६। मं० । ५॥

अर्थ—(तस्मै) उस ब्रह्म की महती कीर्ति को विस्तृत करने के लिये मानो (उद्यन्) उदित होता हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्य (हिङ्करोति) हिङ्कारसाम का अनुष्ठान करता है (सङ्गवः) प्रातःकालिक उदित सूर्य (प्रस्तौति) प्रस्ताव करता है (मध्यन्दिनः) मध्याह्न सूर्य (उद्गायति) उद्गीथ विधि का गायन करता है (अपराह्णः) अपराह्ण सूर्य (प्रतिहरति) प्रतिहार करता है (अस्तं+यन्) अस्त हुआ सूर्य मानो (निधनम्) निधन विधि का अनुष्ठान करता है। इस से यह सिद्ध होता है कि अनादि काल से हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन चला आता है और उद्गीथ में प्रायः प्रधानतया ओङ्कार का ही गान होता है और यही प्रिय नाम ईश्वर का है। इस से सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र हैं उन से दूना ओङ्कार शब्द का पाठ है क्योंकि प्रत्येक मन्त्र के आदि अन्त में इसी का पाठ होता है अन्य का नहीं।

———

ब्राह्मणों में ओम् शब्द ।

आपने जो यह कहा है कि ब्राह्मणग्रन्थों में भी ओं शब्द का विशेष वर्णन नहीं है, अब इस का उत्तर सुनिये ।

चारों वेदों के चार मुख्य ब्राह्मणग्रन्थ हैं ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, ताण्ड्य महाब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद के हैं । पूर्व में कहा गया है कि वेदों के जितने मन्त्र हैं उन से द्विगुण ओङ्कार शब्द का पाठ चारों वेदों में है । अब जो वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे ओङ्कार शब्द को किस आदर बुद्धि से देखते हैं उसे संक्षेप से लिखते हैं ।

ऐतरेय का प्रमाण

त्रयोवेदाअजायन्त । ऋग्वेदएवाग्ने रजायत । यजुर्वेदोवायोः । सामवेदआदित्यात् । तान्वेदानभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्येव ऋग्वेदादजायत भुवरितियजुर्वेदात् । स्वरिति सामवेदात् ॥ ऐतरेयब्रा० पंचमपंचिका खण्ड ३२ ॥

अर्थ—(त्रयोवेदाः) तीनवेद तीनवेद से तात्पर्य त्रयी विद्या का है । अतः इस से चारों का ग्रहण हो जाता है (अजायन्त) उत्पन्न=प्रकाशित हुए । इस मनुष्य लोक में ये वेद किन के द्वारा प्रकाशित हुए सो आगे कहते हैं (अग्नेः एव) अग्नि नाम के ऋषि द्वारा ही (ऋग्वेदः+अजायत) ऋग्वेद उत्पन्न अर्थात् प्रकाशित हुआ (वायोः) वायु नाम के ऋषि से ही (यजुर्वेदः) यजुर्वेद और (आदित्यात्) आदित्य नाम के महर्षि से (सामवेदः) सामवेद (अजायत) प्रकाशित हुआ (तान्+वेदान्) इस प्रकार उन वेदों को (अभ्यतपत्) पर ब्रह्म परमेश्वर ने सर्वत्र प्रकाशित किया (तेभ्यः+अभितप्तेभ्यः) उन वेदों के प्रकाश होने पर (त्रीणि+शुक्राणि) तीन लोक (अजायन्त) प्रकाशित हुए। कौन ? वे तीनों लोक सो आगे कहते हैं (ऋग्वेदात्–एव) ऋग्वेद से ही (भूः इति) भूलोक (अजायत) प्रका-

शित हुआ (यजुर्वेदात्) यजुर्वेद से ही (भुवः इति) भुवः=अन्तरिक्षलोक (सामवेदात्) सामवेद से (स्वः इति) स्वः=द्युलोक (अजायत) प्रकाशित हुआ ।

इसका भाव यह है कि प्रथम भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक के विषय में कुछ जाना नहीं जाता था । जब वेदों की उत्पत्ति हुई तब से ही इन तीन लोकों के पदार्थों को लोग जानने लगे । उस के पहले मानों ये तीनों भुवन अप्रकाशित थे । क्योंकि जिसके विषय में हम कुछ नहीं जानते हैं वे हमारे लिये हैं ही नहीं । मानो, हम लोगों की दृष्टि में उनकी उत्पत्ति ही नहीं हुई वेदों के प्रकाश के अनन्तर ही सृष्टि के विषय में लोग जानने लगे अतः कहा गया है कि वेदों से तीन लोक उत्पन्न हुए । यह भी यहां जानना चाहिये कि पार्थिव पदार्थों का वर्णन विशेष रूप से ऋग्वेद में है । और अन्तरिक्षस्थ पदार्थों का यजुर्वेद में और द्युलोकस्थ पदार्थों का सामवेद में । इस हेतु ऋग्वेद से भूर्लोक, यजुर्वेद से भुवर्लोक और सामवेद से स्वर्लोक (अजायत) उत्पन्न हुआ, अर्थात् प्रकाशित हुआ ऐसा कहा गया ।

भूः भुवः स्वः ये तीनों महाव्याहृति नाम से प्रसिद्ध हैं । जिस के द्वारा सब ही व्यवहार हो उसे व्याहृति कहते हैं । जिस कारण इन तीनों लोकों से सब व्यवहार सिद्ध होता है अतः भूः भुवः स्वः इन तीनों शब्दों से सम्पूर्ण त्रिलोकस्थ पदार्थों का ग्रहण है । ये तीनों शब्द उपलक्षक मात्र हैं । इन तीनों शब्दों के अनेक भाव होते हैं उनको अन्यत्र विस्तार पूर्वक लिखेंगे ।

तानि शुक्राण्यभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो-वर्णा अजायन्त । अकार, उकार, मकार, इति । तानेकधा समभरत् । तदेतद् ओ३म् इति । ऐतरेय ब्राह्मण ५ । ३२

इस प्रकार (तानि) उन (शुक्राणि) तीनों लोकों को (अभ्यतपत्) ब्रह्म ने प्रकाशित किया (तेभ्यः+अभितप्तेभ्यः) इन के प्रकाश होने पर (त्रयः+वर्णाः) ईश्वर के गुणों के वर्णन करने वाले तीन शब्द उत्पन्न हुए । वर्ण शब्द विशेषणगर्भित पद है । इस का अर्थ अक्षर नहीं है किन्तु ब्रह्मका ।

हम लोग जिस पद से वर्णन कर सकते हैं उसे वर्ण कहते हैं (वर्ण्यते निरू-प्यते येन स वर्णः) वे तीनों पद वा शब्द कौन हैं सो आगे कहते हैं (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार । ये ही तीन पद हैं (तान्) उन तीनों पदों का (एकधा) एक में (समभरत्) मिलाया (तद्+एतत्) वह मिल कर यह (ओम्+इति) ओम् पद बना ।

तस्मादोमिति प्रणौति । ओमिति वै स्वर्गो लोकः । ओमित्यसौ योऽसौ तपति ॥ ऐ० ब्रा० ५ । ३२ ॥

(तस्मात्) इस हेतु (ओम्+इति) ओम्—ब्रह्मकी (प्रणौति) स्तुति करते हैं (ओम्+इति) ओम् (वै) ही (स्वर्गः) सुखदेने वाला (लोकः) लोक है (ओम्+इति+असौ) ओम् यह है (यः+असौ) जो यह (तपति) सम्पूर्ण जगत् को तपा रहा है अर्थात् जो सर्वत्र जीवनरूप ताप पहुंचा रहा है वह ओम् है ।

शतपथ का प्रमाण ।

ओम् खंब्रह्म खं पुराणं वायुरंखमिति हस्माह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् । शतपथ ब्रा० कां० १४ । अध्याय ८ ब्रा० १ कण्डिका १ ॥

शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म के ध्यान के लिये इस प्रवाक को कहा है । यहां ओम् पद विशेष्य है, और सब विशेषण हैं, यहां ब्रह्म पद भी विशेषण है । (ओम्) सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, परब्रह्म (खम्) आकाशवत् सर्वव्यापक, अति सूक्ष्म, अरूप, अदृश्य, अव्यवहार्य्य, अतर्क्य आदि गुण विशिष्ट (ब्रह्म) महान् बृहत् है खं कहने से किसी को भौतिक आकाश का भ्रम न हो अतः आगे कहते हैं (खम् पुराणम्) वह कैसा आकाश है तो (पुराणम्) सब से प्राचीन और (खं वायुरम्) जिस में यह सम्पूर्ण वायु विद्यमान है अथवा जो वायुवत् सब का प्राणदाता है । ऐसा जो खं है वह खं ओम् अर्थात् जिसे पुराण अन्य नहीं है और जिस में सूत्रात्मा यह वायु ग्रथित है उसे ओम् कहते हैं । यह ब्रह्म का प्रिय नाम है (इति ह) इसी विषय को (कौरव्यायणीपुत्रः) कौरव्यायणीपुत्र नाम से प्रसिद्ध कोई ऋषि (आह+स्म) कहा करते थे और (ब्राह्मणाः)

वेदविद पुरुष लोग (अयम्) यह ओंकार (वेदः) वेद स्वरूप है (विदुः) ऐसा जानते थे, अर्थात् ओम् जो ब्रह्म सो वेदस्वरूप अर्थात् वेद का साक्षात् कर्ता वही है। ऐसा ब्रह्मविद लोग जानते थे (एनेन) इसी ओम् के द्वारा (यद्+वेदितव्म्) जो कुछ ज्ञातव्य वस्तु है उसे (वेद) जानते हैं।

गोपथ का प्रमाण।

यो ह वा एतमोङ्कारं न वेदावशः स्यादिति। अथ य एवं वेद ब्रह्मवशः स्यादिति। तस्मादोङ्कार ऋचिऋग् भवति। यजुषि यजुः। साम्नि साम। सूत्रे सूत्रम्। ब्राह्मणे ब्राह्मणम्। श्लोके श्लोकः। प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम्। गोप० ब्रा० प्रपाठक १। ब्रा० २३॥

(यः+ह) जो कोई (वै) निश्चित रूपसे (एतम्+ओंकारम्) इस ओंकार को (न) नहीं (वेद) जानता है वह (अवशः) वेद के वश में नहीं होता है अर्थात् वह धर्म्म से बद्ध न हो कर जगत् में महान् उपद्रवी बन जाता है (अथ यः एवं वेद) परन्तु जो ओंकार को इस प्रकार जानता है (ब्रह्म+वशः) वह वेद के वश में ही हो कर संसार का कल्याणकर्ता (स्यात्) होता है (तस्मात्) इस हेतु (ओंकारः) ओंकार (ऋचि) ऋग्वेद के अध्ययन के समय (ऋग्+भवति) ऋग्रूप होता है (यजुषि यजुः) यजुर्वेद में यजुः स्वरूप (साम्नि सामः०) सामवेद में सामस्वरूप, सूत्र में सूत्र, ब्राह्मण में ब्राह्मण, श्लोक में श्लोक और प्रणव में प्रणव होता है अर्थात् ओंकार शब्द सर्वत्र ही संस्कृत भाषा में व्याप्त है जैसे ईश्वर सब पदार्थ में विद्यमान है परन्तु उस का रूप रंग कुछ प्रतीत नहीं होता। जिस में वह है उसी के रूप में प्रतीत होता है। वैसे ही ऋग्वेद के साथ ऋग्वेद स्वरूप, यजुर्वेद के साथ यजुर्वेद स्वरूप, सामवेद के साथ सामवेद स्वरूप और अथर्ववेद के साथ अथर्ववेद स्वरूप ओंकार हो जाता है। इस ओंकार का वर्णन अलंकार रूप से यहां और भी कहा गया है।

ते देवा भीता आसन् क इमान सुरान् अपहनिष्यति। इति। त ओङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुः। ते तमब्रुवन्।

भवता मुखेनेमानसुरान् जयेमेति। स होवाच किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति। वरं वृणीष्वेति। वृणाइति। स वरमवृणोत् न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत्स्यादिति। तथेति। ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धेऽसुरैः संयताआसंस्तानोङ्कारेणाग्नीध्रीयाद्देवा असुरान् पराभावयन्त। गो० प्रपा० १ ब्रा० २३ ॥

अर्थः—(ते देवाः) वे देव (भीताः आसन्) भयभीत हुए कि (कः) कौन (इमान् असुरान्) इन असुरों का (अपहनिष्यति) हनन करेगा तत्पश्चात् (ते) उन देवों ने (ब्रह्मणः) वेद के (ज्येष्ठं पुत्रम्) ज्येष्ठ पुत्र (ओंकारम्) ओंकार को (ददृशुः) देखा (ते) वे देव (तम्) उस से (अब्रुवन) बोले कि (भवता मुखेन) आप की मुख्यता से आप यदि हम लोगों में मुख्य बनें तो (इमान् असुरान्) इन असुरों को (जयेम इति) जीत सकेंगे (सहोवाच) वह ओंकार बोले कि (किं मे) मुझको क्या (प्रतीवाहः भविष्यतीति) प्रतिफल होगा। तब देवों ने कहा कि (वरं वृणीष्व) आप वर मांगे (वृणे. इति) यदि सबों की सम्मति हो तो मैं वर मांगू (स वरम् अवृणीत) उस ओंकार ने वर मांगा कि (माम् अनीरयित्वा) मुझ को न उच्चारण करके (ब्राह्मणाः) ब्रह्मविद् पुरुष (ब्रह्म न वदेयुः) वेद को न बोलें (यदि वदेयु) और यदि बोलें तो (अब्रह्म+स्यात्) वह वेद वेद न होवे (तथेति) देवों ने वैसा ही वर दिया (ते+देवाः) वे देव (देवयजनस्य) यज्ञभूमि के (उत्तरार्धे) उत्तर प्रदेश में (असुरैः) असुरों से (संयताः आसन) युद्ध करने में तत्पर हुए (तान्+असुरान) उन असुरों को (तेन+ओंकारेण) उस ओंकार की सहायता से (आग्नीध्रीयात्) यज्ञ स्थान से (पराभावयन्त) दूर किया।

भाव इस का यह है कि इस शरीर में देवासुर संग्राम बराबर हुआ करता है। दुष्ट और उत्तम स्वभाव इस में विद्यमान हैं। दुष्ट स्वभाव का नाम असुर और उत्तम स्वभाव का नाम देव है। जब दुष्ट स्वभाव की अधिक वृद्धि और उत्तम स्वभाव की न्यूनता होती है तब दुष्ट स्वभावरूप असुर उत्तम स्वभाव रूप देवों को दबा लेते हैं। यही असुरों का विजय है और कभी उत्तम

स्वभाव की वृद्धि होने से देवों का ही विजय होता है। यह संग्राम अनादि काल से चला आता है इसी को देवासुर संग्राम कहते हैं। जब २ उत्तम प्रवृत्तिरूप देव ब्रह्म के निकट आते हैं तब २ उनका विजय होता है जब मनुष्य ओंकार के आश्रय में आकर अपनी नीच वृत्ति को प्रतिदिन विनष्ट करना आरम्भ करता है तब एक न एक दिन वह अवश्य विजयी होता है। इस प्रकार की आख्यायिका प्राचीन ग्रन्थों में बहुधा आती हैं इस को आगे लिखेंगे। यहां केवल ओंकार का वर्णन मात्र लिखना है अतः अन्य विषय में जाना उचित नहीं।

छान्दोग्योपनिषद् से ओंकार का आगे विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे। इस हेतु ताण्ड्य महाब्राह्मण का उदाहरण नहीं लिखते हैं। छान्दोग्योपनिषद् ताण्ड्य महाब्राह्मण का ही एक भाग है।

ताण्ड्य ब्राह्मण में ओं शब्द।

ताण्ड्य महाब्राह्मण जिस को सामब्राह्मण भी कहते हैं प्रसिद्ध ब्राह्मणों में से एक है। इसी का एक भाग छान्दोग्योपनिषद् है। जो ८ प्रपाठकों में विभक्त है। तीन ब्राह्मणों में से ओंकार के प्रयोग दर्शाये गये हैं अब इस चतुर्थ ब्राह्मण से भी उदाहरण कहे जाते हैं। इस के साथ २ सब उपनिषदों के भी प्रयोग अर्थ सहित लिखे जायेंगे।

ओमित्येतदक्षर मुद्गीथमुपासीत ॥
ओमित्युद्गायति । तस्योपव्याख्यानम् ॥ छा० १।१।१ ॥

अर्थ—मनुष्य मात्र को उचित है कि (एतत्) इस (अक्षरम्) क्षर= विनाश उस से रहित (ओम्+इतिं) ओम् ऐसा नामवाला (उद्गीथम्) सबों से गाने योग्य उद्गीथ=ब्रह्म की (उपासीत) उपासना करे अर्थात् ओम् नाम द्वारा सर्वव्यापी सदा नित्य स्वरूप ब्रह्म की उपासना करे। ओं नाम द्वारा ही क्यों उसकी उपासना करें सो आगे कहते हैं (हि) क्योंकि (ओम्+इति) इसी नाम से (उद्गायति) प्राचीन ऋषियों ने उसको गाया अब भी सब गाते हैं और इसी प्रकार सब कोई आगे भी गावेंगे (तस्य) उस का (उपव्याख्यानम्) व्याख्यान आगे कहेंगे इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् प्रथम ओङ्कार से ही प्रारम्भ होती है। और प्रथम प्रपाठक में ओम् शब्द का विशेष वर्णन है ईस उपनिषद् में जहां २ ओम् शब्द का

पाठ आया सो अर्थ सहित लिख देते हैं। दो वार प्रथम प्रवाक में ओम् शब्द का पाठ आ चुका है।

वागेव×ऋक् । प्राण साम (३) ओमित्येतदक्षरमुद्गीथः॥ छान्दो० प्रपाठक १ । खण्ड १ । प्रवाक ५ ॥

(वाग्×एव) ईश्वर की वाणी ही (ऋक्) ऋग्वेद है (प्राणः सामः) प्राण समान सामवेद है (एतद्×अक्षरम्) यह अविनश्वर ब्रह्म (ओम्+इति) ओम् है (उद्गीथः) इसी ओम् को सामवेदी लोग उद्गीथ कहते हैं। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि सामवेदी लोग ब्रह्म को उद्गीथ नाम से बहुधा पुकारते हैं क्योंकि उत्=उच्च स्वर से वही, गीथ=गाने योग्य है इस हेतु उस ब्रह्म का नाम उद्गीथ है और ऋग्वेदी प्रभृति ओङ्कार और प्रणवआदि नाम से उसी को पुकारते हैं अर्थात् ओङ्कार का ही एक नाम उद्गीथ भी है। सामवेद में प्रत्येक गान विशेष कर के पांच हिस्सों में बांटे रहते हैं। १ हिङ्कार, २ प्रस्ताव, ३ उद्गीथ, ४ प्रतिहार, और ५ निधन ये इन के नाम हैं। अतः गान के एक भेद का भी नाम उद्गीथ है अप्रसंगात् इनके वर्णन की आवश्यकता नहीं।

तदेतन्मिथुनम् (४) ओमित्येतस्मिन्नक्षरेसंसृज्यते । यदा वै मिथुनौ समागच्छतः। आपयतो हवै तावन्योऽन्यस्य कामम् ॥ छा० १ । खं० १ । प्रवाक ६ ॥

यद्धि किञ्चानुजानाति (५) ओमित्येव तदाह । छा० १ । १ । ८ तेनेयंत्रयीविद्यावर्तते (६) ओमित्याश्रावयति (७) ओमिति शंसति (८) ओमित्युद्गायति । छा० १ । १ । ९ ।

(तत्+एतत्) वह यह (मिथुनम्) ऋक् सामरूप जोड़ा (एतस्मिन्+अक्षरे) इस अविनश्वर (ओम्+इति) ओम्नाम ब्रह्म में (संसृज्यते) सम्बद्ध है अर्थात् ऋग्वेद सामवेद के तात्पर्य्य केवल ब्रह्म से ही है (यदा+वै) जब (मिथुनौ) स्त्री पुरुष धर्मानुकूल संगत होते हैं तब (ह+वै) निश्चय (तौ) वे दम्पती

(अन्योऽन्यस्य) एक दूसरे की इच्छा को (आपयतः) पूर्ण करते हैं। वैसा ही जब ऋग्वेद और सामवेद दोनों गीत समय में संमिलित कर गाये जाते हैं वा विचारित होते हैं तब ये दोनों मिल कर साधक की इच्छा को पूर्ण करते हैं। आगे अनुज्ञा=अनुमति अर्थ ओम् शब्द का कहते हैं (यद्+हि+किञ्च) जो कुछ (अनुजानाति) कोई ऋत्विक् अनुज्ञा करते हैं तो अन्य ऋत्विक् (ओम्+इत्येव+तदाह) ओम् को उत्तर में कहते हैं (तेन) उसी ओंकार ब्रह्म से (इयं+त्रयी+विद्या) यह त्रयीविद्या वेद (वर्तते) वरतती है (ओम्+इत्येव+आश्रावयति) ऋग्वेदी लोग ओम् को ही सुनाते हैं (ओम्×इति×शंसति) ओम् की ही यजुर्वेदी प्रशंसा करते हैं (ओम्+इति+उद्गायति) सामवेदी ओम् को ही उच्च स्वर से गाते हैं इत्यादि। इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम खंड में यह ओम् शब्द ८ वार आया है।

(९) ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत (१०) ओमितिह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् १।४।१। यदा वा ऋचमाप्नोति (११) ओमित्येवाति स्वरतिएवꣳसामैवं यजु० १।४।४ (१२) ओमितिह्येष स्वरन्नेति १।५।३, (१४) ओ३म् अदा३म (१५) ओ३म् पिबा३म (१६) ओ३म् देवावरुणोप्रजापतिः सविता २ न्नमिहा २ हरदन्नपते ३ ऽन्नमिहा२ ऽऽहराऽहारी मिति १, १२, ५॥

(१८) सओमिति वाहोद्गामीयते ॥ ८, ६, ५ ॥

इस प्रकार देखते हैं कि १८ वार प्रत्यक्ष ओम् शब्द का पाठ आया है। "ओङ्कार" शब्द का भी तीन वार पाठ आया है। यथाः—

तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओंकारः संप्रास्रवत् ॥ ओंकारेण सर्वा वाक् संतृण्णा ओंकार एवेदं सर्वम् २, १३, ३

(तेभ्यः) उन (अभितप्तेभ्यः प्रकाशितवेदों से (ओङ्कारः संप्रास्रवत)

ओङ्कार वाच्य ब्रह्म का प्रकाश हुआ। अर्थात् प्रथम लोगों को वेद का ज्ञान हुआ तत्पश्चात् उस वेद की शिक्षा द्वारा ब्रह्म का ज्ञान हुआ (ओङ्कारेण) सो उस ओङ्कार=ब्रह्म से (सर्वा+वाक् +संतृण्णा) सम्पूर्ण वेद वाणी सम्बद्ध हैं (ओङ्कार एव ×इदम्+सर्वम्) ब्रह्म ही सब कुछ है। *

अन्य उपनिषदों में "ओम्" शब्द का पाठ.

ईशोपनिषद्

ओं कृतोस्मर कृतꣳस्मर ॥ ईश० १७ ॥

हे मनुष्यो, मरण समय में उसी ओङ्कार का स्मरण करो।

केनोपनिषद् में ओम् वा ओङ्कार शब्द का पाठ नहीं आया है।

कठोपनिषद्

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति। तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठ० २ ॥ १५ ॥

(सर्वे वेदाः) सब वेद (यत्÷पदम्) जिस पद का (आमनन्ति) व्याख्यान करते हैं=बारम्बार गाते हैं (च) और (सर्वाणि×तपांसि) सब तप (यद्+वदन्ति) जिस के महत्त्व को प्रकाशित कर रहे हैं (यद्) जिस पद की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्य+चरन्ति) ब्रह्मचर्य करते हैं। हे शिष्य (तत्+पदम्) उस पद को (संग्रहेण) संक्षेप से (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) कहता हूं (ओम्+इति+एतत्) ओम् यह पद है।

प्रश्नोपनिषद्।

प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत ॥१॥ कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति, तस्मै स हो वाच, एतद्वै सत्यकाम परञ्चापर-

---

* छान्दोग्योपनिषद् का बृहद्भाष्य प्रकाशित होगया है। उस में छान्दोग्य सम्बन्धी वाक्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। पता:- वैदिक यन्त्रालय अजमेर (राजपूताना)

ञ्च ब्रह्म यदोंकारः ॥ २ ॥ यः पुनरेतं त्रिमात्रेणैवो मित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत ॥५॥ तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्ताच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ ॥ प्रश्नोपनि० पञ्चम प्रश्न ॥

(प्रायणान्तम्) मरण पर्यन्त जो कोई (ओंकारम्) ओंकार वाच्य ब्रह्म का (अभिध्यायीत) सब प्रकार से ध्यान करे (१) उसे कौन फल होता है यह प्रश्न है (यः) जो उपासक (एतम्) इस सर्वव्यापी (परम् पुरुषम्) परमेश्वर का (एतेन) इस (त्रिमात्रेण) अविनश्वर (ओम्+इति) ओम् पद के द्वारा (अभिध्यायीत) ध्यान करे) ५) वह ब्रह्म को पाता है यह वर्णन है यत्+तत्) जो वह ब्रह्म (शान्तम्) शान्त (अजरम्) अजर (अमृतम्) अमृतप्रद (अभयम्) अभय (परम्+च+ इति) सर्वोत्तम सर्वोत्कृष्ट है (तम्) उस सर्वान्तर्यामी परमपुरुष को (विद्वान्) विद्वान् लोग (ओङ्कारेणैव) ओङ्कार रूप ही (आयतनेन) आश्रय से (अन्वेति) पाते हैं ।

मुण्डकोपनिषद्

ओमित्येवं ध्यायथ । आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ मुण्डकोपनिषद् २, २, ६ ॥

आचार्य अपने शिष्यों को उपदेश देते हैं कि हे शिष्यो ! (ओम्+इति+एवम्) ओङ्कार को आलम्बन बना (आत्मानम्) परमात्मा का (ध्यायथ) ध्यान करो (स्वस्ति+वः) तुम लोगों का कल्याण होवे। (तमसः) अविद्या से (परस्तात्) पर (पाराय) पार उतरने के लिये तुम लोगों को कल्याण होवे ।

माण्डूक्योपनिषद्

ओमित्येतदक्षर मिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव । मां० १ ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥

अमात्र श्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानयएवंवेद ॥१२॥

सम्पूर्ण माडूक्योपनिषद् केवल ओङ्कार का ही वर्णन करती है इस के ऊपर अन्य प्रकरण में बृहत् व्याख्यान किया जायगा।

तैत्तिरीयउपनिषद्

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदꣳ सर्वम् । ओमित्येतदनुकृति ह स्मवाअप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति॥ ओं शोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रति गिरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ॥ ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति॥ ब्रह्मो प्राप्नवानीति ॥ १ ॥ ओं दश ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षाध्याय अष्टम अनुवाक का वचन है यहां एक ही अनुवाक में ९ वार ओम शब्द का पाठ आया है। इसका संक्षिप्तार्थ ।

(ओमिति ब्रह्म) ओम् यह ब्रह्मवाचक शब्द है (ओमिदꣳ सर्वम्) ओम्=सर्वरक्षक सर्वान्तर्यामी परमानन्द परमेश्वर ही इस जगत् में सारवस्तु है (ओम्+ इतिएदत्+अनुकृति+ह+स्म+वै+) ओम् यह शब्द अनुकृति= अनुकरण वाचक है। यह प्रसिद्ध है (अप्योश्रावय) यज्ञ में इसी को सुनते सुनाते हैं (ओमितिसा ०)सामवेदी ओम् का ही गान करते हैं (ओम् शोमिति ०) ऋग्वेदी लोग विविध शस्त्र (स्तोत्र, स्तव स्तुति) से इसी ओम् की स्तुति करते हैं (ओमिति+अध्वर्युः ०) यजुर्वेदी अध्वर्यु प्रत्येक वचन में ओङ्कार को ही कहते हैं (ओमिति ब्र०) ब्रह्मा नाम ऋत्विक ओंकार के द्वारा ही आज्ञा करता है (ओमिति+अग्नि०) अग्निहोत्र के लिये ओङ्कार के

द्वारा ही आज्ञा देता है (ओमिति ब्रह्मणः०) ब्रह्मवित् पुरुष ओं शब्द के द्वारा प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मैं इस के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होऊं । वे अवश्य ही ब्रह्म को प्राप्त होते हैं । ऐतरेयोपनिषद् में साक्षात् ओम् शब्द का पाठ नहीं है । छान्दोग्योपनिषद् के उदाहरण पूर्व लिखे गये हैं ।

बृहदारण्यकोपनिषद् ।

बृहदारण्यकोपनिषद् तृतीय (३) अध्याय ९ वें ब्राह्मण प्रथम कण्डिका में "ओमिति होवाच,, यह पाठ ७ वार आया हुवा है । पुनः ५ । २ । १ ॥ ५ । २ । ३ ॥ ६ । २ । १ ॥ में यह पाठ आया है पुनः ओं खं ब्रह्म । ५ । १ । १ ॥ ओं क्रतोस्मर कृतंस्मर ५ । १५ । १ ॥ इत्यादि प्रयोग बृहदारण्यकोपनिषद् में भी हैं ।

गीता भी एक प्रसिद्ध पुस्तक है अतः इस से भी ओङ्कार शब्द के प्रयोग लिखते हैं यथाः—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ,
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् , गी०८,३१
वेद्यं पवित्रमोङ्कारमृक्सामयजुरेवच , गीता ९ , १७ ॥
ओं तत्सदिति निर्देशाद् ब्रह्मणास्त्रिविधः स्मृतः, गी०,१७,२३
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ,
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ गी०१७,२४॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन (यः) जो पुरुष (ओम्+इति+एकाक्षरं+ब्रह्म) ओम् इस एकाक्षर ब्रह्मको (व्याहरन्) कहते हुए और (माम्+अनुस्मरन्) तद्द्वारा ब्रह्मका स्मरण करते हुए (प्रयाति०) इस शरीर को त्याग प्रस्थान करते हैं (सः०) वे (परमांगतिम्) परम गति को प्राप्त होते हैं । १३ । (वेद्यं पवित्रम्०) ओङ्कार ज्ञातव्य है यह परम पवित्र है इसी प्रकार उस ब्रह्म ज्ञान के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ज्ञातव्य हैं (ओम्+तत्+सत्०) इन तीन पदों से ब्रह्म का निर्देश होता है (तस्मात्०) इस हेतु ब्रह्मवादियों की यज्ञ, दान और तप आदि क्रिया ओङ्कार पूर्वक ही होती है । इत्यादि गीता भी ओङ्कार की सर्वथा प्रशंसा करती है ॥

ओङ्कार सम्बन्धी उपनिषद् वचनों पर शङ्का ।

पूर्व वर्णन से और भी शङ्का बढ़ गई । क्योंकि जैसे मूर्तिपूजक लोग किसी प्रतिमा या मूर्तिविशेष में विष्णु महादेवादि देवों का अध्यारोप कर उन का पूजन करते हैं तत्सदृश ही यह ओङ्कार प्रतीत होता है ।

इस ओङ्कार में भी ब्रह्म का अध्यारोप आप करते हैं इसी हेतु इस शब्द को आप श्रेष्ठ सर्वोत्तम मानते हैं अन्यथा इस शब्द पर इतना आग्रह क्यों ? जैसा मूर्ति पूजकों का आग्रह मूर्ति में रहता है वैसाही ओङ्कार में आप का है । फिर इन दोनों में भेद क्या । जिन उपनिषदों के अनेक प्रमाण देकर ओङ्कार की सर्व श्रेष्ठता आपने सिद्ध की है उन उपनिषदोंके लेख से भी ओंकार एक मूर्तिवत् ही सिद्ध होता और आप वैसा ही मानते हैं अतः मूर्ति पूजकों से भेद कुछ नहीं है । प्रमाण के लिये इस को देखिये ।

"ओमित्येतदक्षरमुदगीथमुपासीत" इत्यादि

छा० उ० १, १, १

इस प्रवाक की व्याख्या में श्री शङ्कराचार्य्यजी कहते हैं—

"तथा च अर्चादिवत् परमात्मनः प्रतीकं सम्पद्यते",

इसका भाव यह है कि जैसे मूर्ति परमात्मा का प्रतीक है । तद्वत् ओङ्कार भी उसका प्रतीक है । पुनः वहां ही श्री शङ्कराचार्य कहते हैं कि—

"ओङ्कारे परमात्मप्रतीके दृढ़ामेकाग्रयलक्षणां मतिं सन्तनुयात्" ॥

परमात्म प्रतीक ओङ्कार में दृढ़ एकाग्र बुद्धि स्थापन करे पुनः बृहदारण्यकोपनिषद् के ।

ओम् खं ब्रह्म, खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्माह कौरव्यायणीपुत्रः । ५ । १ । १ ॥

इस कण्डिका के भाष्य में—

विष्णवादिप्रतिमाभेदेनैवोङ्कारो ब्रह्मेति प्रतिपत्तव्यम् ।

पुनः श्रद्धाभक्तिभ्यां भावविशेषेणचोङ्कार आवेशयति विष्णवङ्गाङ्कितायां शैलादिप्रतिमायां विष्णुं यथा लोकः।

इत्यादि शङ्कराचार्य का कथन है। भाव इसका यह है कि जैसे विष्णु और प्रतिमा में अभेद मानकर पूजा करते हैं वैसे ही है, ओंकार ब्रह्म ही है ऐसा समझे। पुनः जैसे लोग विष्णु के अंगावयवयुक्त शैलादि प्रतिमा में विष्णु की स्थापना करते हैं तद्वत् श्रद्धा भक्ति और भाव विशेष से ओङ्कार रूप प्रतिमा में ब्रह्म की स्थापना करे।

इन सब प्रमाणों से तो यही सिद्ध होता है कि उपनिषद् के समय यद्यपि शैलादि की प्रतिमा नहीं थी परन्तु ओंङ्कार रूप प्रतिमा उस समय में भी विद्यमान थी। परन्तु इन दोनों में कोई भी भेद नहीं अतः आप भी प्रतिमापूजकवत् ही हैं। यदि आप कहें कि वह तो श्री शंकराचार्य जी का सिद्धान्त है उपनिषद् का नहीं। इस पर इतना ही कहना उचित है कि क्या श्री शंकराचार्य जी उपनिषद् का तात्पर्य नहीं जानते थे ? एक ऐसे विद्वान् का भाष्य कदापि मिथ्या नहीं हो सकता उपनिषद् के तात्पर्य को जैसा उन्हों ने समझा प्रायः जगत् में कोई भी वैसा समझने वाला अब होना नहीं। और पद भी बहुत ही विस्पष्ट हैं:—

"ओमित्येतदक्षरम्" ओम् इस अक्षर की उपासना करनी चाहिये न कि ओम् वाच्य ब्रह्म की।

"एतदेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम,
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्म लोके महीयते" ॥

इत्यादि कठ के वचन हैं। यहां विस्पष्ट कहते हैं कि यही ओंकार अक्षर ब्रह्म है। यही ओंकार अक्षर उत्कृष्ट है। इसी अक्षर को जो जैसा चाहता है वह उस को होता है। यही ओंकाररूप आलम्बन श्रेष्ठ। यहीं पर है इसी को जान ब्रह्म लोक में पूज्य होता है। इत्यादि वचन विस्पष्ट ही ओंकार को ब्रह्म मानता है। यदि आप इस से कुछ विलक्षण ओंकार को

मानते हैं तो विस्पष्ट रूप से मुझे समझा देवें। मैं यह भी पूछता हूं। यदि ब्रह्म के सहस्रों नाम गुण कर्म से कहे गये हैं तो फिर इसी एक ओंकार नाम में इतना आग्रह क्यों। किसी एक नाम से वा गुणों से वा अन्य किसी रीति से ब्रह्म जानना चाहिये। जब आप एक नाम को श्रेष्ठ समझते हैं और इस के पूजन धारण आदि से मुक्ति मानते हैं तो विचारी मूर्त्तिपूजा ही क्या बिगाड़ती है। इन सब का जब उत्तर दे लेवेंगे तब पुनः यदि शंका होगी तो पूछूंगा।

शका समाधान ।

आपकी शंका बड़ी लम्बी है। एवमस्तु। सुनिये! मूर्त्ति पूजा और ओंकारोपासना दोनों कदापि तुल्य नहीं हो सकती। वेदों में कहीं भी मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं है। मूर्तिपूजा बहुत पीछे से चली है। जो २ मूर्ति आजकल पूजी जाती है। वह बहुत आधुनिक है। त्रिदेव के वर्णन में इस को विस्तार से लिखेंगे। यहां इतना जानिये कि ऋषियों का सिद्धान्त वेदानुकूल है। प्रसिद्ध उपनिषदें वेदतत्त्ववित् ऋषि प्रणीत हैं। इस हेतु वेदविरुद्धचर्चा उपनिषदों में नहीं हो सकती। इस समय इस विवाद को त्याग यह विचारिये कि जैसा प्रतिमा में ध्यान होता है वैसाही क्या ओंकार में ध्यान करने का तात्पर्य है? ऐसा कदापि नहीं हो सकता क्योंकि ओंकार एक शब्द है इसका रूप क्या होगा! यदि कहो कि जैसा आज कल "ओम्" शब्द को लिखते हैं वैसा ही आकार हो गया। और उसी आकार को ब्रह्म मान ध्यान करे। सुनिये! इस में भी बड़ी बाधा होगी क्योंकि जितने प्रकार की लिपियां (वर्णमालाएं) देश में प्रचलित हैं उतने प्रकार के ध्यान हो जांयेगे। भारतवर्ष में ही मुख्य और गौण भेद से पचास लिपियें पाई जाती हैं उतने प्रकार से "ओम्" यह शब्द लिखा जायगा। और तब आप के कथनानुसार उतने प्रकार के ध्यान हो जांयगे। यदि कहो कि हम को यह इष्ट है क्योंकि भगवान् के अनन्त रूप हैं अनन्त प्रकार से उनका ध्यान होगा जैसे अनन्त प्रकार की प्रतिमाओं में तत्सदृश ध्यान होता है। इस में क्षति ही क्या? सुनिये यदि उपनिषत्कार का यह तात्पर्य रहता तो कम से कम लिपि के आकार के अनुकूल दो चार आकार के ध्यानस्वरूप अवश्य बतला जाते सो नहीं किया इस से उपनिषत्तात्पर्य आपके कथन के विरुद्ध मालूम होता है। सम्पूर्ण उत्तर मीमांसा जो वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है उसे देखिये। कभी भी एक दूसरे के विरुद्ध गुण

नहीं कहे गये और न ब्रह्म का कोई आकार ही उपदिष्ट हुआ है। और न उपनिषदों में ही ओंकार का कोई रूप कहा गया है। इस हेतु आपका कथन शास्त्र विरुद्ध है। और दूसरी बात यह है कि अक्षर का कोई आकार नहीं होता। किन्तु बालकों को बोध के लिये लोगों ने विविध लिपियां कल्पित की हैं। यदि लिपि के अनुसार ओंकार के तत्तत् रूप का ध्यान करोगे तो आपका ध्यान भी कल्पित मात्र होगा इस हेतु से भी यह कथन ठीक नहीं यदि कहिये कि जैसे कल्पित अक्षर के द्वारा सत्य ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही कल्पित आकार के द्वारा सत्यब्रह्म को भी जान जांयगे। यह कथन भी ठीक नहीं देखिये। अदृश्य वस्तु के जानने के लिये शब्द मध्यस्थ होता है। न कि मूर्त्ति। रामचन्द्र का वर्णन शब्द के द्वारा वाल्मीकि जी कह गये हैं। न कि मूर्त्ति के द्वारा। जब कोई वाल्मीकिरामायण अथवा तुलसीकृतरामायण के शब्द को पढ़ता है तो उसका मन गद्गद् हो जाता है। रामचन्द्र के सब चरित्र उसके सामने नाचने लगते हैं। शब्द को ही पढ़ता है। उसी को विचारता है। यहां यह भी ध्यान रक्खो कि श्री रामचन्द्र अयोध्या के मनुष्य राजा थे। उन के माता पिता पुत्र कलत्र सब कोई थे। इस लिये इनकी प्रतिकृति काग़ज़ पर लिखी जा सकती है प्रस्तर आदि पर इनकी मूर्त्ति ज्यों की त्यों खोदी जा सकती है। आज कल यदि होते तो उनका फ़ोटो भी हो सकता था। अब आप क्षण मात्र विचार कीजिये यदि आपने कभी भी राम को शब्द के द्वारा नहीं सुना है। आप को यह किसी ने नहीं कहा है कि श्री रामचन्द्र अयोध्या के राजा थे इत्यादि। इस अवस्था में किसी प्रस्तर से बनी हुई कौशल्यादेवी की गोद में बैठे हुए रामचन्द्र को देख कर के भी आप को कुछ भी बोध नहीं होगा फिर आप को वाणी के द्वारा पूछना ही पड़ेगा कि यह क्या है। फिर शब्द के द्वारा ही उसका भेद बतलावेंगे तब ही ज्ञान होगा। इस हेतु शब्द मध्यस्थ होता है न कि मूर्ति। अब पुनः देखिये। जिस समय आप को किसी ने बतलाया कि यह रामचन्द्र हैं और यह इनकी माता कौशल्या देवी हैं उस समय आप को कैसे बोध हुआ। क्या अक्षर के ध्यान से अथवा शब्द के बोध से। निःसन्देह शब्द के बोध से ही आप को पदार्थ का ज्ञान हुआ। उस समय इस अक्षर का क्या आकार है। इस पर ध्यान नहीं है। किन्तु पद के अर्थ के ऊपर ध्यान है। कहीं कथा वा व्याख्यान होता है

तो जो गंवार अक्षर नहीं जानता है परन्तु जिस भाषा में कथा होती है उस को समझता है तो उस को सब कथा ज्ञात हो जाती है । अक्षर की कुछ आवश्यकता नहीं होती । पुस्तकों में केवल अक्षर के आकार के देखने से तुम को क्या कुछ बोध होता ? कुछ भी नहीं यदि अक्षर के आकार से किसी को बोध हो तो एक महामूर्ख को भी बोध होना चाहिये क्योंकि वह आंख से अक्षर के आकार को देख रहा है यह कि अक्षर टेढ़ा है या सीधा है–त्रिकोण है वा गोल है इत्यादि । परन्तु उस अज्ञानी को कुछ भी ज्ञान नहीं होता । जन्म भर ही अक्षर का ध्यान करता रहे । परन्तु उस को एक शब्द का भी बोध नहीं होगा । इस से सिद्ध हुआ कि अक्षर शब्द जानने के लिये एक संकेत मात्र है। परन्तु शब्द पदार्थ ज्ञान में मुख्य कारण है यदि शब्द न होवे तो हम कुछ नहीं जान सकते । पुस्तक में अक्षर रहता है जब तक वाणी के द्वारा यह न बतलाया जायगा कि यह 'क' है यह 'ख' है तब तक बोध नहीं होगा । देखिये अक्षर क्या पदार्थ है । बालक अक्षर सीखते हैं उनको धीरे २ सब अक्षरों का बोध हो जाता है । परन्तु उन अक्षरों से किसी पद का बोध नहीं होता । यदि अक्षरों से पद का बोध होता तो उन को सब पद पदार्थ का भी बोध हो जाना चाहिये । परन्तु सो नहीं होता । इस हेतु अक्षर बोध का कारण नहीं । अब देखिये । अक्षर जानने पर भी पद का अर्थ घोषना पड़ता है । इस से भी इस को पदार्थ का बोध नहीं होता । जब तक वह उस पदार्थ को अपनी आंखों से नहीं देख लेता वा अनुमान आदि प्रमाणों के द्वारा नहीं जान लेता तब तक किसी वस्तु का बोध नहीं होता। इस हेतु अक्षर बोध का कारण नहीं। देखिये एक अन्ध बालक है उस को अक्षर के विना ही पढ़ाने पर सब बोध हो जाता है। हां, आंख विना रूप का बोध नहीं होता। परन्तु वह पढ़ने पर सारा रामायण कह सकता है और आपने देखा भी होगा ऐसी घटना बहुत होतीहैं मान लीजिये कि आप अंग्रेज़ी अक्षर नहीं जानते सामने किसी ने अंग्रेज़ी अक्षर लिख कर रख दिये । आप देखते हो कि ये कैसे होते हैं मानलो कि आपने अक्षर जैसे लिखे जाते हैं वैसे लिख भी लिये। परन्तु आज तक आपको यह किसी ने नहीं बतलाया कि यह 'A' है और यह 'B' है । अब विचारिये अक्षर के आकार का बोध होने पर भी आपको यथार्थ में A B C D का बोध नहीं हुआ । इस हेतु अक्षर बोध का कारण नहीं । यथार्थ में वस्तु का बोध कुछ शब्द के द्वारा होता है ।

परन्तु यथार्थ में साक्षात अनुभव से ही वस्तु का यथार्थ बोध होता है इस के लिये ईश्वर ने भिन्न २ इन्द्रिय भिन्न २ वस्तु के ज्ञान के लिये दिये हैं उसी से यथार्थ ज्ञान होता रहता है । इत्यलम् ।

यदि कहिये कि 'ओम् शब्द का जैसे उच्चारण होता है तदनुकूल ध्यान से उपनिषद् का तात्पर्य है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि कण्ठ स्वर भेद से इस के उच्चारण भी अनन्त होंगे फिर कोई स्थिरता नहीं रहेगी और न ईदृक् कोई प्रमाण ही मिलता, यह भी देखिये उच्चारण ध्वनि को कहते हैं । वह उच्चारण वा ध्वनि तो ईश्वर नहीं । यह सब अज्ञानता की बात है । ऋषियों के तात्पर्य्य की ओर चलिये यदि कहो कि श्री शंकराचार्य्य जी ने तो प्रतिमावत् ही ओंकार को माना है सो कैसे ? इसका उत्तर तो यह है कि शंकराचार्य्य जी के भाष्य में एक दो ही स्थल में ऐसे नहीं जहां पर अशुद्धि हो किन्तु शतशः स्थल ऐसे हैं जो परस्पर विरुद्ध हैं और दूसरी बात यह है कि शंकराचार्य जी का सिद्धान्त आज तक लोगों ने नहीं समझा है यदि समझा है तो कोई बतलावे कि वह कहने वाला ईश्वर क्यों नहीं और आप ईश्वर क्यों नहीं, फिर इन दोनों ईश्वरों में महायुद्ध क्यों ? अथवा इन दोनों ईश्वरों में एक सम्मति क्यों नहीं जब एक पदार्थातिरिक्त अन्य पदार्थ ही नहीं फिर एक दूसरे से ठोकर क्यों खाता है । घास भी ईश्वर और घास खाने वाला पशु भी ईश्वर । दीप भी ईश्वर और दीप से प्रकाश्य घट भी ईश्वर । सर्प भी ईश्वर उस के विष से मरने वाला शरीरधारी भी ईश्वर इत्यादि । सांख्य शास्त्र में अच्छा कहा गया है "बालोन्मत्तादि समत्वम्" ऐसा कथन बालक और पागल आदि मनुष्यों के कथन के समान ही है इस हेतु मैं कहता हूं कि शांकर सिद्धान्त अभी तक अज्ञेय ही अथवा जगदुपकारी नहीं इस हेतु केवल शंकराचार्य के ऊपर निर्भर हो उपनिषदों और शास्त्रों का निर्णय नहीं करसकते ।

दो आख्यायिकाएं

मैं दो उपनिषदों से दो आख्यायिकाएं आप को सुनाता हूं जिन से विस्पष्ट प्रतीत हो जायगा कि उपनिषद् के समय सब प्रकार के प्रतीकों में

---

१ किसी एक वस्तु में ब्रह्म को मान कर उस वस्तु की उपासना करने का नाम प्रतिकोपासना है । जैसे सूर्य्य में ईश्वर को मान सूर्य्य को उपासना करे तो यह प्रतिकोपासना कहलावेगी ।

उपासना निषेध था, ध्यान देकर इन के भाव और गाम्भीर्य्य को विचारिये छान्दोग्योपनिषद् के पंचम प्रपाठक के एकादश खण्ड से इस आख्यायिका का आरम्भ होता है। एक समय औपमन्यव, पौलुषि, भाल्लवेय, शार्कराक्ष और आश्वतराश्वि ये पांच यद्यपि महाश्रोत्रिय महाशाल थे परन्तु "कोनुआत्मा किंब्रह्मेति" आत्मा और ब्रह्म क्या है इस विषय के निर्णय में असमर्थ हो आरुणि उद्दालक के निकट आए। आरुणि उद्दालक भी उन महाश्रोत्रियों के सन्देह को दूर न कर सके तब ये छवों मिल कर केकयदेश के महाराज अश्वपति के निकट आए। इन महात्माओं में जो ब्रह्म सम्वाद हुआ है सो सुनने योग्य है।

१—अश्वपति राजा पूछते हैं कि हे औपमन्यव ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

औपमन्यव। हे राजन् ! मैं द्युलोक रूप आत्मा की उपासना करता हूं।

अश्वपति। औपमन्यव ! यह द्युलोक तो वैश्वानर आत्मा का मूर्धा समान है। वह ब्रह्म नहीं। आप का मूर्धा (शिर) गिर पड़ता यदि आप मेरे निकट नहीं आते (१)

२—अश्वपति। हे पौलुषि ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

पौलुषि। हे राजन् ! आदित्यरूप आत्मा की उपासना मैं करता हूं।

अश्वपति। हे पौलुषि ! यह आदित्य तो वैश्वानर आत्मा के नेत्र समान है। यह ब्रह्म नहीं। आप अन्ध हो जाते यदि मेरे समीप नहीं आते।

३—अश्वपति। हे भाल्लवेय ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?।

भाल्लवेय ! मैं वायु रूप आत्मा की उपासना करता हूं।

अश्वपति। यह वायु तो वैश्वानर आत्मा के प्राण समान है। यदि आप मेरे समीप नहीं आते तो आपका प्राण निकल जाता। यह वायु ब्रह्म नहीं।

४—अश्वपति हे शार्कराक्ष ! आप किस आत्मा की उपाना करते हैं ?

शार्कराक्ष हे राजन् ! मैं आकाश रूप आत्मा की उपासना करता हूं।

अश्वपति। यह आकाश तो वैश्वानर आत्मा के शरीर समान है यदि

(१):—औपमन्यव कंत्वमात्मान मुपास्स इति।
दिवमेव भगवो राजन्निति होवाच। एष वै सुतेजा इत्यादि छान्दोग्य ५। १२॥

आप यहां नहीं आते तो आपका शरीर विशीर्ण हो जाता। यह आकाश ब्रह्म नहीं।

५— अश्व[redacted]। हे अश्वतराश्वि ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

अश्वपति। हे राजन् ! मैं जल रूप आत्मा की उपासना करता हूं।

अश्वपति। यह जल तो अत्मा के वस्ति समान है। यदि आप यहां नहीं आते तो आप का वस्ति छिन्न भिन्न हो जाता। यह जल ब्रह्म नहीं।

६—अश्वपति। हे उद्दालक ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

उद्दालक मैं पृथिवी रूप आत्मा की उपासना करता हूं।

अश्वपति। यह पृथिवी तो वैश्वानर आत्मा का चरण समान है। यदि आप यहां नहीं आते तो आप का चरण नष्ट होजाता। यह पृथिवी ब्रह्म नहीं।

तत्पाश्चात् महाराज ने उन छवों विद्वानों को ब्रह्म के विषय का उपदेश किया है जिस को सुन उन सबों की शंका निवृत्त होगई और बड़ी प्रसन्नता से अपने २ आश्रम को लौट गये। अब इस आख्यायिका के तात्पर्य्य पर ध्यान दो।

यहां संक्षेप से कहा गया है कि इस जगत् में जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। वे ब्रह्म नहीं। सूर्य, वायु, आकाश, जल, पृथिवी ब्रह्म नहीं। इन में सूर्य से लेकर पृथिवी तक सब पदार्थ आगये। और इस से जो बचे उन का ग्रहण द्युलोक के साथ है। सो वह द्युलोक भी ब्रह्म नहीं। अतः इनको जो कोई ब्रह्म के स्थान में पूजता है वह अज्ञानी है। और इस से यह भी सिद्ध हुआ कि यह सब जड़ पदार्थ हैं इन की स्तुति प्रार्थना जो करते हैं वे परम अज्ञानी हैं। भारत वासी विद्वानो ! ऋषि प्रणीत आख्यायिका पर ध्यान दीजिए और सूर्य आदि की उपासना त्याग चेतन ब्रह्म की पूजा कीजिए।

सूर्यादिक में ईश्वरोपासना निषेध

बहुधा लोग कहते हैं कि [redacted] सूर्य आदिकों की उपसना हम नहीं करते हैं। किंतु उन में ब्रह्म की उपसना करते हैं। क्योंकि ब्रह्म सर्वव्यापक होने से सूर्यादिकों में भी विद्यमान है इस हेतु सूर्यादिकों को प्रतीक मान कर

उपासना करने में कोई क्षति नहीं । इस महाभ्रम को दूर करने के लिए पुनः उपनिषद् निम्न प्रकार से उपदेश देती है यथाः—

गर्गगोत्रोत्पन्न वालाकि नाम का एक विद्वान् था । उस ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था परन्तु शास्त्रों के तात्पर्य से सर्वथा अनभिज्ञ था । वह प्रतीक उपासना को ही सर्वश्रेष्ठ मान उसी का उपदेश सब को दिया करता था । एक समय अनेक देशों से भ्रमण करता हुआ काशी के महाराज अजातशत्रु के निकट आ बोला कि के राजन् ! यदि आप की इच्छा हो तो आप को ब्रह्म का उपदेश करूं । राजा अत्यन्त प्रसन्न हो बोला कि मैं इतने वचन के लिए आप को १००० गायें भेट देता हूं । क्योंकि जनक २ कह कर सब महात्मा विद्वान् मिथिला देश को ही चले जाते हैं । हम अधर्मों को कोई ब्रह्मज्ञानी आकर उपदेश नहीं देते । सो बड़ी कृपा हुई है कि आपका दर्शन हुआ आप ब्रह्म का उपदेश देवें । (१)

तब वह गार्ग्य वालाकि महाराज से उपदेश देने लगा कि हे सम्राट् ! आदित्य (सूर्य) में जो यह पुरुष है । इसी को हैं ब्रह्म मान कर उपासना करता हूं । आप भी इसी सूर्य में ब्रह्म पुरुष की उपासना करें । यही पुरुष ब्रह्म है (२) यहां पुरुष शब्द का अर्थ ब्रह्म शक्ति है इसी भाव से गार्ग्य ने पुरुष शब्द का प्रयोग किया है यदि पुरुष शब्द का केवल पदार्थ शक्ति ही अर्थ किया जाय तो वालाकि की प्रतिज्ञा का भंग होगा । क्योंकि वालाकि राजा से कह चुका है कि मैं आप से ब्रह्म का उपदेश करूंगा । सो सूर्य रूप अधिष्ठान में ब्रह्म की उपासना कहता है । इस हेतु यहां पुरुष शब्द का अर्थ वालाकि की दृष्टि में ब्रह्म है ।

राजा ने इस वचन को सुन कर कहा कि नहीं २ इस सूर्य में ब्रह्म की उपासना मुझे न बतलावें । यह सम्वाद अच्छा नहीं । हां यह सूर्य इस लोक

१—दृप्तबालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आस । सहोवाचाजातशत्रुं काश्य ब्रह्म ते ब्रवाणीति । सहोवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् । अ० । २ । ब्रा० । १ ॥

२—स होवाच गार्ग्यो य एवासावादित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति । स होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन् संवदिष्ठाः अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्द्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेव मुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्द्धा राजा भवति । २। बृह० उ० २।७।

में सब का अतिक्रमण करने वाला है और राजा और मुर्द्धा के समान है। ऐसा तो मैं भी मानता हूं। और इतना मान कर सूर्य सम्बन्धी गुणों का अध्ययन मैं भी करता हूं। परन्तु इस में ब्रह्म की उपासना करनी सर्वथा अनुचित है।

तब पुनः गार्ग्य सूर्य को छोड़ चन्द्र को दिखला बोला कि हे राजन! चन्द्र में जो यह पुरुष है इसी को मैं ब्रह्म जानता हूं और इसी में ब्रह्म की उपासना करता हूं आप भी इसी में ब्रह्म की उपासना करें राजा इस वचन को सुन बोला नहीं, २ इस चन्द्र में जो पुरुष है वह ब्रह्म नहीं। और न इस चन्द्र में ब्रह्म की उपासना करनी ही उचित है। इस में आप सम्वाद न करें यह ब्रह्म नहीं। हां इस को सोमराजा लोग कहते हैं। सो मैं भी इस को सोम राजा मानता हूं। परन्तु सोम राजा में ब्रह्म की उपासना न तो मैं करता हूं और न किसी को करना ही योग्य है।

तब बालाकि ने क्रम से विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदर्श (दर्पण) शब्द आदि पदार्थों में ब्रह्म की उपासना का उपदेश किया। राजा सर्वत्र निषेध करता गया। अन्त में राजा ने कहा कि क्या आप इतना ही जानते हैं?। इतने से ब्रह्म कदापि भी विदित नहीं होता है। तब गार्ग्य लज्जित होकर कहने लगा कि हे राजन्! अब मैं आप से ही ब्रह्म का उपदेश ग्रहण करना चाहता हूं। कृपा कर ब्रह्म का उपदेश मुझे देवें राजा ने कहा कि यह एक उलटी बात है कि ब्राह्मण इस आशा से क्षत्रिय के निकट आवे कि मुझ को यह ब्रह्म का उपदेश करेगा। एवमस्तु। आप कुछ दिन मेरे गृह पर निवास करें। मैं आप को बतलाऊंगा इस के अन्तर राजा ने ब्रह्म का उपदेश दिया है जिस को सुन वह बालाकि यथार्थ ब्रह्मवित हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में इस आख्यायिका के भाव का मैंने वर्णन किया है। देखिए—

उपनिषदों की दोनों आख्यायिकाओं से सिद्ध हुआ कि सूर्य आदि प्रतिमा में भी ब्रह्म की उपासना नहीं करनी चाहिए। जब सूर्य आदि प्रतीक में भी उपासना निषेध है तब कब सम्भव है कि मृत्तिका धातु आदि

१—स होवाचाजातशत्रु रेतावन्नु इत्येतावद्धीति। नैतावता विदितं भवतीति। स होवाच गार्ग्यँउपत्वा यानीति। १४। सहोवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमंतद्यद् ब्राह्मणः क्षत्रिय-मुपेयाद् ब्रह्म मे वक्ष्यतीति। व्येवत्वाज्ञपयिष्यामीति। इत्यादि। बृ० उ०। २

से बनी हुई मूर्त्ति में ब्रह्मोपासना की विधि पाई जाय। अब रहगया ओङ्कार रूप प्रतीक। सो इस के विषय में पूर्व लिख आया हूं कि यह सूर्य आदिक वत् प्रतीक नहीं। यह ईश्वर का एक मुख्य नाम मात्र है इस नाम के द्वारा ईश्वर को जान उसकी साक्षात् उपासना करनी चाहिए। अब आप लोग विचार कर सकते हैं कि शंकराचार्य ने जो यह कहा था कि जैसे प्रतिमा में विष्णु का ध्यान होता है वैसे ही ओङ्कार में भी ब्रह्म बुद्धि करे। सो कहां तक यथार्थ है। हे जिज्ञासुओ! शंकराचार्य के भाष्य से जो आप लोगों को भ्रम हुआ है। उसे त्याग कीजिये। शंकराचार्य का अद्वैतवाद इन दोनों आख्यायिकाओं के द्वारा समूल विरुद्ध सिद्ध होता है। शंकराचार्य्य ने बड़े जोर से ही जोर दिया है कि जो, उपनिषद् और वेद विरुद्ध है उसको कदापि नहीं मानना चाहिए अब आप सोचिये यदि यह जगत् ब्रह्म ही रहता तो अश्वपति इस की उपासना का क्यों कर निषेध करता। और यदि इस जगत् में जो पदार्थ शक्ति है वही ब्रह्म रहता तो भी अजातशत्रु आदित्यपुरुष आदि की उपासना का क्योंकर निषेध करता। अथवा जैसे विष्णु की उपासना शालग्राम में होती है इसी प्रकार सूर्य्यादिक में ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये यह भाव ऋषियों का होता तो भी अजातशत्रु सूर्यादिक में उपासना निषेध नहीं करता। यदि कहो कि ओङ्कार रूप अधिष्ठान में ब्रह्मोपासना करने से कोई क्षति नहीं। तो यह भी उचित नहीं। इस प्रकरण में विस्पष्टरूप से कहा गया है कि शब्द को भी अधिष्ठान मान कर ब्रह्मोपासना करना समुचित नहीं[1]। फिर इस अवस्था में श्री शंकराचार्य जी का कथन कैसे माना जा-सकता। अब आप इन दोनों आख्यायिकाओं पर विचार कीजिए कि शंक-राचार्य की प्रतिज्ञा कहां तक उपनिषदों के अनुकूल है। जब २ श्री शंकरा-चार्य ने दूसरों के ऊपर चढ़ाई की है तब २ बड़े जोर से कहा है कि वेद विरुद्ध होने से यह सर्वथा त्याज्य है। "उपनिषदों को भी शंकराचार्य वेद ही मानते हैं"। परन्तु आश्चर्य यह है कि निज कथन को शंकराचार्य वेदा-नुकूल नहीं बनाते हैं। इत्यलम्॥

१—स होवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दो ऽनुदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचा-जातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः इत्यादि। १०।

ओङ्कार का गूढ़ तात्पर्य्य ।

१—हम देखते हैं कि "अ+उ+म्" इन तीन अक्षरों से "ओम्" शब्द बना हुआ है। अर्थात् "ओम्" शब्द में तीन अक्षर हैं। २—जब ओम् शब्द लिखा जाता है तब ओ और म के मध्य में भी तीन का ही अंक लिखा रहता है। जब किसी मंत्र के आदि में यह "ओम्" शब्द लिखा वा बोला जायगा तोः—

'ओमभ्यादाने'

इस पाणिनि सूत्रानुसार प्लुत होजाता है अर्थात् "ओ" त्रिमात्रिक होजाता है इसी हेतु जब ओम् शब्द लिखते हैं तब 'ओ' के आगे तीन का अंक लिख देते हैं यह ३ तीन का अंक प्लुत धर्म का सूचक है। ३—ओङ्कार का नाम भी तीन ही अक्षर का है प्रणव और उद्गीथ। ४—इस ओम् के आगे जप करने के समय तीन ही महाव्याहृतियें भूः भुवः स्वः जोड़ देते हैं यद्यपि महाव्याहृतियां सात हैं। वे ये हैं भूः १ भुवः २ स्वः ३ महः ४ जनः ५ तपः ६ सत्यम ७। परन्तु जप के समय तीन ही व्याहृतियें जोड़ी जाती हैं। ५—पुनः इन तीन महाव्याहृतियों के आगे तीन ही पद वाली गायत्री लगाई जाती है। गायत्री सात छंदो में से एक छंद का नाम मात्र है। यह तीन पदों की होती है। प्रत्येक पद में ८ अक्षर होते हैं। तीनों पद मिलाकर २४ चौबीस अक्षरों की गायत्री होती है। ६—उपनिषद् और धर्म्मशास्त्र के अनुसार तीन वेदों से तीनों अक्षर लिये गये हैं। इस प्रकार देखने से आश्चर्य होता है कि इस ओङ्कार के साथ तीन क्यों कर लगा हुआ है।

१—वैदिक भाषा में देखते हैं कि ओं शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः ! इस प्रकार शान्ति शब्द तीन ही बार कहा जाता है। २—विवाह आदि शुभ कर्म्म में **विष्टरो विष्टरो विष्टरः। 'पाद्यं' 'पाद्यं' 'पाद्यम्' अर्घोऽर्घोऽर्घः। आचमनीयम्। आचमनीयम्। आचमनीयम्।** इत्यादि—एक २ शब्द को तीन बार २ कहते हैं। ३—निरुक्तकार मुख्यतया तीन ही देवता मानते हैं? आदित्य। वायु। अग्नि। ४ प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, तृतीय

१—तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः सूर्यो-द्युस्थानः नि० दै० १। ४१।

सवन इस प्रकार सवनें भी तीन ही माने गये हैं। ५—अग्नि भी तीन ही माने गये हैं—गार्हपत्य आवहनीय दक्षिणाग्नि। ६—वेदों की रचानाएं भी तीन ही प्रकार की हैं ऋग १ साम २ यजुः ३ (३)

७—यज्ञोपवीत तीन सूत्रों का ही होता है। ८—ऋषिऋण, पितृऋण, देव ऋण ये तीन ही प्रकार के शास्त्रीय ऋण हैं। ९—माता, पिता, और आचार्य ये ही तीन गुरु माने गये हैं। १०—सांख्यशास्त्र में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आदिभौतिक तीन दुःख कहे गये हैं। ११—सत्त्व रजस् और तमस् येही तीन पदार्थ वा तीन गुण कहे गये हैं। १२—ईश्वर, जीव और प्रकृति ये ही तीन पदार्थ प्रतीत होते हैं। इत्यादि अनेक त्रित्वविशिष्ट पदार्थ वैदिक भाषा में हैं १३—पुराणों में ब्रह्मा विष्णु महेश तीन देव। महालक्ष्मी महासरस्वती महाकाली ये तीन देवियां। त्रिविक्रम। त्रिलोक महादेव ये साथ त्रिशूल त्रिपुण्ड आदि। १४—व्याकरण में भूत भविष्यत् वर्त्तमानकाल तीन वचन तीन पुरुष आदि माने गये हैं। १५—बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य तीन अवस्थाएं इत्यादि। १६—कृस्तान लोक पिता, पुत्र पवित्रात्मा तीन ईश्वर मानते हैं।

इत्यादि अनेक पदार्थों का वर्णन तीन से होता है। अब विचारना चाहिये कि ये सब क्या हैं। इन में क्या सत्यता है और ओङ्कार में तीन अक्षरों से विशेष क्या तात्पर्य हो सकता है। इस ओङ्कार के तीन अक्षर उपदेश देते हैं कि यह जगत् तीन पदार्थों से भूषित है। ईश्वर जीव और प्रकृति ये ही तीन

१—ब्रह्मवादिनो वदन्तियद्वसूनां प्रातः सवनम् रुद्राणां माध्यन्दिनंसवनम्। आदित्यनाञ्च विश्वेषाञ्च देवना तृतीयसवनम्। छान्दोग्य उ० ॥ २। २४। १

त्रया वै देवाः। वसवो रुद्रा आदित्याः। तेषांत्रिभक्तानि सवनानि। वसूनामेव प्रातः—सवनम् रुद्राणां माध्यन्दिन सवनम्। आदित्यानां तृतीयसवनम्। शतपथब्राह्मण काण्ड ४

३—वेद चार हैं ऋग्, यजुः, साम और अथर्व। यहां,यह भेद जानना चाहिये "तेषांमृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्दः। मीमांसा के इन सूत्रों के अनुसार जिस में पादव्यवस्था हो वह ऋक् जो गाया जाय वह साम और शेष को यजु कहते हैं। अर्थात् पद्यात्मक गद्यात्मक और गानात्मक जो तीन प्रकार की रचनाए हैं उनको ही ऋक् यजुः साम कहते हैं और शब्दमय संसार में येही तीन प्रकार की रचनाएं हो सकती हैं अधिक नहीं इसी हेतु वेद को 'त्रयी' कहा है और इसी कारण ऋक् यजुः साम का अधिक नाम आता है। इसी के अन्तर्गत अथर्व होजाता है इस हेतु अथर्व का पृथक् नाम कम आता है।

पदार्थ हैं। न इन से अधिक न इन से न्यून। इन तीनों के यथावत् जानने से मनुष्य परम सुख का भागी बन सकता है। इन तीनों के जानने के लिये त्रयी विद्या के अध्ययन अध्यापन की आवश्यकता है इसी हेतु ब्रह्मचारी त्रिवृत् यज्ञोपवीतादिक धारण कर दुष्कर ब्रह्मचर्य्यव्रत का निर्वाह करते हैं। और त्रयी विद्या का अध्ययन करते। इसी से तीनों ऋण तीनों दुःख आदि मिटते हैं। इसी से माता आदि तीनों गुरु सन्तुष्ट रहते हैं। इसी से तीनों सवनों की उपासना होती है। इत्यादि ओंकार शब्द के गूढ़ तात्पर्य प्रति दिन विचारो और इस के अनुकूल चलो। ग्रन्थ के विस्तार के भय से हमने तुम लोगों को संक्षेप से भाव दर्शाया है। तुम स्वयं इस को वारम्वार विचारो, मनन करो। तब तुम को स्वयं तात्पर्य्य प्रकाशित होने लगेगा।

"ओङ्कार शब्द की रचना का परम गुढ़ भाव"

अकार अक्षर और वेद लिपि आदि

देखो इस "ओम्" शब्द में अकार उकार और मकार शब्द है। १—ऋग्वेद का आरम्भ अकार अक्षर से हुआ है। अग्निमीळे इत्यादि। २—देश में जितनी लिपियां हैं वे अकार से ही आरम्भ होती हैं। अ आ इ ई इत्यादि। अंगरेज़ी अक्षर भी अकार से आरम्भ हुआ है A B इत्यादि A आकार का सूचक है। उर्दू भी अकार से आरम्भ होती है अलिफ़ बे इत्यादि। अलिफ़ अकार का सूचक है।

अकार और पाणिनि

३—महावैयाकरण पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी को अकार से ही आरम्भ कर अकार पर ही समाप्त करते हैं। यथा—

अ इ उ ण्। ऋ ऌ क्।

इत्यादि आदि सूत्र हैं। और अन्तिम सूत्र—

"अ+अ" । ८ । ४ । ६७

है। देखो पाणिनि ने अकार अक्षर का कितना आदर किया है। तुम लोगों में से बहुत लोग कहेंगे कि यह आकस्मिक घटना है। परन्तु तुम

ध्यान रक्खो। यह आकस्मिक घटना नहीं महर्षि पाणिनि ने जान बूझ कर आदि अन्त में अकार का प्रयोग किया है। भगवान् पाणिनि ने "ओम्" शब्द को ऐसे धातु से सिद्ध किया है कि जिसके आदि में अकार ही है। अर्थात् "अव" धातु से और धातुपाठ में "अव" धातु के जितने अर्थ किये गये हैं उतने अर्थ अन्य किसी धातु के नहीं हैं। यथा—

अव-रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, स्वाम्यर्थयाचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति, आलिंग, हिंसा, दान, भाग, वृद्धिषु। धातुपाठ देखो।

अकार और संस्कृत लिपि

संस्कृत के जितने व्यञ्जन अक्षर बालकों को प्रथम सिखलाए जाते हैं। वे सब ही अकार अक्षर से संयुक्त रहते हैं। अर्थात् क ख ग घ आदि अक्षरों में "अ" संयुक्त हैं क्योंकि इनका अपना स्वरूप क् ख् ग् घ् आदि है। अर्थात् जिसको व्याकरणानुसार हल् कहते हैं। व्यञ्जन वर्ण स्वर की सहायता के विना उच्चरित नहीं होते हैं। इस हेतु प्रत्येक व्यञ्जन में अकार अक्षर मिलाकर बालकों को सिखलाया जाता है। अब तुम विचार करो यदि अक्षर बनाने वाला चाहता तो क ख ग घ इत्यादि के स्थान में कि खि गि घि इत्यादिक बना सकता था अथवा अंगरेजी उर्दू के समान किसी में इ किसी में उ किसी में ए आदि स्वर लगा कर बनाता जैसे बी, सी, डी, जी, के, आदि अक्षर हैं। इन में ई ए आदि अक्षर निरर्थक हैं इसी प्रकार के खे गु घु ङी इत्यादि बनाने वाला बना सकता था। ऐसा न कर के सब व्यञ्जन में अकार का ही योग रक्खा है। क्या ही आश्चर्य की बात है।

ओं शब्द और संस्कृत लिपि

संस्कृत में अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये ही पांच ह्रस्व स्वर हैं। न इस से अधिक न न्यून। अर्थात् पांच ही ह्रस्व स्वर हैं यथार्थ में पूछो तो ये ही पांच स्वर हैं। इन में ही दो दो अक्षर मिल कर ए ऐ ओ औ बन गये हैं जैसे:—

अ+इ=ए। अ+ए=ऐ। अ+उ=ओ। अ+ओ=औ। एवं अ+अ=आ। इ+इ=ई। उ+उ=ऊ। ऋ+ऋ=ॠ। अ+अ+अ=आ ३। इ+इ+इ=ई ३। उ+उ+उ=ऊ ३। ऋ+ऋ+ऋ=ॠ ३। इस प्रकार विचार कर के देखोगे

तो पांच ही स्वर संस्कृत में हैं। अब तुम को एक आश्चर्य्य लीला इस ओङ्कार के साथ बतलाता हूं ध्यान देकर विचारो। इन पांचों स्वरों में पहला अक्षर "अ" है "ओम्" इस में भी पहला अक्षर "अ" है। इन पांचों स्वरों में मध्य अक्षर "उ" है। "ओम्" में भी मध्य अक्षर "उ" है।

अब रह गया "मकार" इसका वृत्तान्त सुनो। संस्कृत अक्षरों में पांच ही वर्ग भी होते हैं। अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग। अर्थात् क ख ग घ ङ १। च छ ज झ ञ २। ट ठ ड ढ ण ३। त थ द ध न ४। प फ ब भ म ५ पांच पांच अक्षर मिलकर एक एक वर्ग कहलाता है अब देखो इन पांचो वर्गों में "म" यह अक्षर अन्तिम है। अब "ओम्" शब्द को देखो इस में भी "म" अक्षर अन्त में है। क्या यह घटना आकस्मिक है ?। नहीं। यह आकस्मिक नहीं। ऋषियों ने जान बूझ कर ऐसा ही बनाया। ओं शब्द के अनुसार ही अपने अक्षरों को भी बनाया है ईश्वर की ओर ले जाने की ये सब विधि हैं। हे जिज्ञासुओ ! तुम स्मरण रक्खो ऋषि लोग सदा ईश्वर में ही मग्न रहते थे उसको ही अपने चारों ओर देखा करते थे ऋषियों को चारों तरफ ईश्वर ही ईश्वर सूझते थे। इस हेतु इन की समस्त क्रियाओं में समस्त मन्त्रों में ईश्वरीय ही भाव देखोगे। क्या तुम लोग भी इस प्रकार अपने मन को समाधान नहीं कर सकते हो ?।

ओङ्कार और ऋषियों का तात्पर्य।

यद्यपि "ओम्" शब्द प्रधानतया ब्रह्मवाचक है। इस में अनेक प्रमाण प्रथम कहे गये हैं और आगे भी कहे जायंगे। परन्तु इस बात पर ध्यान रक्खो कि जब यह ओं शब्द पृथक् २ होकर तीन अक्षरों में अर्थात् "अ, उ, म," में विभक्त होता है तब केवल ब्रह्म वाचक ही नहीं रहता है किन्तु अकार से ब्रह्म का, उकार से जीव का, और मकार से माया प्रकृति का ग्रहण होता है अब तुम को यह विदित होगा कि ऋषियों ने क्योंकर अपनी अक्षरमाला की आदि में 'अ' मध्य में 'उ' और अन्त में "म रखकर ओम्" के साथ तुलना की है। ऋषियों के भाव कुछ गूढ़ होते हैं। यद्यपि अक्षरत्वेन ओं शब्द में कुछ भी विशेषता नहीं है परन्तु ब्रह्मवाचकत्वेन बड़ी विलक्षणता है। अब संस्कृत लिपि के भाव पर ध्यान दो। देखो ईश्वर सब का आदि है।

आदि कारण है और जीव प्रकृति में मिलकर अदृश्य होरहा है। इसी हेतु हमारे तत्त्ववित् ऋषियों ने अपनी लिपि में भी आदि अक्षर "अकार" ही रक्खा है जो ब्रह्मवाचक है। और जैसे ब्रह्म सब में व्यापक होकर रम रहा है। परन्तु देखा नहीं जाता उस २ पदार्थ की ही प्रतीति होती है ब्रह्म की नहीं इसी प्रकार तुम देखते हो कि "क ख ग घ" इत्यादि सब व्यञ्जनों में ब्रह्म वाचक "अकार" व्यापक हो रम रहा है परन्तु विदित नहीं होता केवल व्यञ्जन ही व्यञ्जन प्रतीत होता। इस रचना से ऋषि उपदेश देते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक है। इस विलक्षणता के ऊपर ध्यान दो। पुनः ज्यों ज्यों बालकों को शब्दों का बोध होता जाता है। त्यों २ ज्ञान होने लगता है कि इन सब क ख ग इत्यादि अक्षरों में अकार मिला हुआ है। इसी प्रकार इस जगत् में प्रथम प्रकृति और जीव ही देख पड़ते हैं ब्रह्म नहीं। परन्तु ज्यों २ शास्त्रों का अध्ययन और मनन करता जाता है त्यों २ बुद्धिमान पुरुषों को प्रकृति जीव में व्यापक ब्रह्म भासित होने लगता है।

अब दूसरी विलक्षणता यह देखो कि मैंने तुम से अभी कहा है कि "अ" से ब्रह्म का 'उ' से जीव का और "म्" से माया प्रकृति का ग्रहण है इस "ओम्" शब्द में जो अकार और उकार हैं वे स्वर वर्ण हैं। और तुम जानते हो की स्वर वर्ण का यह स्वभाव है कि उसका उच्चारण आप से आप होता है अर्थात् स्वर वर्ण के उच्चारण के लिये व्यञ्जन वर्ण की वा अन्य स्वर की सहायता नहीं ली जाती है। यह स्वर वर्णों का स्वभाव है। अब देखो परमात्मा और जीवात्मा वाचक शब्द अ और उ स्वर है। अर्थात् इस से यह दिखलाया गया है कि स्वर के समान परमात्मा और जीवात्मा स्वतन्त्र है। दूसरों की अपेक्षा नहीं करते। परमात्मा स्वतन्त्र है इस में तो अणुमात्र सन्देह ही नहीं परन्तु कर्म करने में जीवात्मा भी स्वतन्त्र है। इस प्रकार ये दोनों स्वतन्त्र हैं। और दोनों चेतन हैं।

मकार और संस्कृत लिपि।

अब प्रकृति की ओर देखो। प्रकृति जड़ है परमात्मा और जीवात्मा चेतन के विना वह कुछ नहीं कर सकती। इसी हेतु प्रकृति वाचक "मकार" ओम् शब्द में विद्यमान है। मकार व्यञ्जन वर्ण है। अर्थात् जैसे व्यञ्जन वर्ण स्वर वर्ण की सहायता चाहता है तद्वत् व्यञ्जन मकार शब्द वाच्य प्रकृति भी ईश्वर

और जीव की सहायता चाहती है। इसी हेतु प्रकृति का वाचक व्यंजन मकार रक्खा गया है। देखो कैसा सूक्ष्म ऋषियों का विचार है।

एक कौतुक तुम लोगों को और सुनाना चाहते हैं ध्यान देकर सुनो। संस्कृतभाषा में प्रायः मकार का अनुस्वार हो जाता है। अनुस्वार हो जाने पर यह मकार सब अक्षरों के शिर पर चढ़ जाता है। इस से सिद्ध हुआ कि मकार सब अक्षरों में प्रबल है। जैसे मायावाचक मकार अक्षरों में प्रबल दीखता है इसी प्रकार जीवों के बीच माया अति प्रबल है सब जीवों को दबा कर शिर पर सवार रहती है। परन्तु यह भी स्मरण रक्खो जब मकार पदान्त रहता है तब ही अनुस्वार होता है। और तब ही शिर पर चढ़ता है। पदान्त का भाव यह है कि पद के अन्त में हो अर्थात् जब मकार सर्वथा पूर्णावस्था में प्राप्त हुआ है। तब ही ऐसे रूप को धारण कर सकता है। अपदान्तस्थित मकार की भी बड़ी दुर्दशा होती रहती है। इस से यह सिद्ध होता है कि माया को जितनी स्वतन्त्र करते जावोगे उतनी ही वह शिर पर सवार रहेगी। परन्तु उसे दबाते जावोगे तो उसका स्वरूप भी बदलता जायगा और एक न एक दिन उसे तुम दबा लोगे।

हे जिज्ञासुओ! कदाचित् तुम लोगों को यहां एक सन्देह उत्पन्न हो गया होगा कि ईश्वर के शिर पर भी माया सवार हो जाती होगी। सुनो। वैयाकरणों का यह सिद्धान्त है कि अनुस्वार स्वर वर्ण का धर्म्म नहीं है किन्तु स्वर वर्ण से परे अनुस्वार होता है अर्थात् "अं" यह बराबर है "अ+०" का। यद्यपि लिखने में अनुस्वार सब अक्षरों के ऊपर रहता है। परन्तु यथार्थ में यह अनुस्वार स्वर वर्णों से सर्वथा पृथक् ही रहता है। मैंने पूर्व में जो कहा है वह एक रहस्य मात्र है और आज कल अक्षर लिखने की परिपाटी के अनुसार कहा है। इस हेतु यथार्थ में तो यह प्रकृति जीव के शिर पर भी नहीं चढ़ सकती क्योंकि जीव चेतन है। और प्रकृति जड़ है। ईश्वर के शिर पर चढ़ना तो अति कठिन है। हां 'लोक में वैसी प्रतीति होती है। हां' कभी कभी स्वर वर्ण अनुनासिक

(१)–मोऽनुस्वारः । सू० ८ । ३ । २३ ।

(२)–सुप्तिङन्तं पदम् । ० । १ । ४ । १४ ।

(ँ) के स्वरूप में आ जाता है। और अनुनासिक एक प्रकार से अनुस्वारवत् उच्चारित होता है उस समय पाणिनि व्याकरण के अनुसार स्वर का धर्म्म बन जाता है। सो तुम जानते हो कि यह लौकिक दृष्टि से वर्णन है। यह एक व्याकरण का अन्य विषय है। यहां पर इसकी आवश्यकता नहीं। तुम यह अवश्य समझो कि प्रकृति भी ईश्वर को बड़ी प्यारी है। यदि प्रकृति नहीं होती तो ईश्वर की महिमा हम जीवों को कैसे प्रकट होती। इस हेतु प्रकृति भी हम को ईश्वर की ओर ले जाती है। इस को समझो। यह समझने की बात है। ईश्वर का यह स्वभाव है कि वह प्रकृति को फैलाता है और नियमानुसार उसका पुनः संहार करता है। अब तुम समझो कि जैसे अनुनासिक स्वर का एक धर्म्म (स्वभाव) है। वैसे ही प्रकृति को प्रकाशित और संहृत करना भी ईश्वर का स्वभाव है। इस हेतु संस्कृत में वैसा रहस्य रक्खा गया। एवमस्तु। माया की भी थोड़ी प्रबलता नहीं है। इस विषय में कुछ तन्त्र की बात यहां कहना चाहते हैं।

मकार और तन्त्र

तन्त्र शास्त्र में ह्रीं, श्रीं, क्रीं, क्लीं, ऐं, स्त्रीं इत्यादि। एवं[1] अं, कं, खं, गं, घं, ङं, आं। इं, चिं, छिं, जिं झिं ईं। उं, टुं, ठुं, डुं, ढुं णुं ऊं। एं, तें, थें, दें, धें, नें, ऐं। ओं, पों, फों बों भों, मों औं। इत्यादि भी विविध प्रकार के तान्त्रिक मन्त्र होते हैं"। परन्तु तुम सर्वत्र देखते हो कि मकार का अनुस्वार ही है जो तन्त्र में विन्दु कहलाता है। इस का कारण यह जानो कि तन्त्र शास्त्र में माया की ही प्रधानता है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ये तीनों देव देवी के सेवक हैं। इस हेतु माया वाचक मकार को सब अक्षर के ऊपर

---

१ प्राणेशस्तेजसा रूढो भेरुण्डाठ्योमविन्दुमान्। बीजमेतं समुद्धृत्य द्वितीय मुद्धरेत्प्रिये। १०। सन्ध्यारक्त समारूढा वामनेत्रेन्दु संयुता। तृतीय शृणु कल्याणि दीपसंस्थः प्रजापतिः। ११। गोविन्दु बिन्दु संयुक्तः साधकानां सुखावहः। बीजत्रयान्ते परमेश्वरिसम्बोधनंपदम्। १२॥

इत्यादि। महानिर्वाण तन्त्र पञ्चमोल्लासः।

अं आं मध्ये कवर्गञ्च ईं मध्ये चवर्गकम्। उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्य तवर्गकम्। १०८। ओं औं मध्य पवर्गञ्च यदि शान्तं वरानने। बिन्दुसर्गान्तरालेव षडक्षरो मन्त्र ईरितः। ११०। महामनिर्वाण मन्त्र ॥ ५ ॥

रखते हैं। यही इसका गुप्त भेद है। अन्यथा व्याकरणानुसर "ह्रीं" के स्थान में "ह्रीम्" "श्रीं" के स्थान में "श्रीम्" इत्यादि होना चाहिये सो तन्त्र में नहीं होता है। इसका कारण केवल यही है कि माया को नीचे नहीं रखना चाहते हैं। यद्यपि तन्त्र शास्त्र में भी ओंकार का वैदिक अर्थ भी लिया गया है और वैदिक ओंकार शब्द भी रक्खा है। तथापि इनका मार्ग सब से भिन्न ही है।

उकार और जीव

तुम यहां यह भी देखते हो कि अकार और मकार के बीच में उकार स्थापित है। जो उकार जीव वाचक है। इस से क्या उपदेश मिलता है? तुम दैनिक जीवन में देखते हो कि कभी यह जीव ब्रह्म की ओर कभी प्रकृति माया की ओर दौड़ता है। तुम ने कभी बालकों की क्रीड़ा देखी होगी। कभी २ अपने एक मित्र के एक हाथ को एक मित्र खींचता है। और दूसरा उसके दूसरे हाथ को खींचता है। और कहता है कि हे मित्र! मेरी ओर चलो, मेरी ओर चलो। बिचला बालक चुप चाप स्थिर रहता खींचने वालों में से जिस की शक्ति अधिक होती है वह अपने प्रिय मित्र को अपनी ओर खींच ले जाता है। इसी प्रकार यह जीव मध्यगत है। ईश्वर इस को अपनी ओर और प्रकृति अपनी ओर खींचती है। यद्यपि ईश्वर परम बलवान है यदि वह चाहे तो इस को अपनी ही ओर खींच ले। परन्तु तुम जानते हो कि ईश्वर ने इस जीव को कर्म्म करने में स्वतन्त्र कर दिया है। इस हेतु ईश्वर केवल संकेत करता है कि हे जीव! तू मेरी ओर आ। तेरा मंगल है। सेवक के अन्तःकरण में सर्वदा चेताना रहता है। यही ईश्वर का खींचना है। परन्तु जीव का विचार बड़ा तुच्छ है। अपने मंगल को झट समझ नहीं सकता। दूसरी ओर प्रकृति की जगमगाहट देखकर इसी की ओर ढुल जाता है। पश्चात् जब कभी प्रकृति से धोखा खाने लगता है तब उसे चेत होता है। तब पुनः अपने प्रिय मित्र ईश्वर की ओर दौड़ता है। इस अवस्था में भी बड़ी प्रीति से ईश्वर इसको अपने साथ ले लेता है। इस घटना को सूचित करने को जीवात्मा वाचक शब्द भी बीच में स्थापित किया गया है।

— ——

अन्य नामों की अपेक्षा ओङ्कार की श्रेष्ठता।

यद्यपि ईश्वर के अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, सविता आदि अनेक नाम हैं। इनके गुण अनन्त हैं। इस हेतु इन के नाम भी अनन्त हैं। तथापि सब नामों में यह "ओम्" नाम ही श्रेष्ठ है। इस की श्रेष्ठता पूर्व प्रकरणों में अच्छे प्रकार दर्शाई गई है। परन्तु उतने से ही इस की पूरी श्रेष्ठता का वर्णन नहीं हुआ। बहुत कुछ अभी वक्तव्य है जितना ही इस के ऊपर मनन करेंगे उतनी ही सूक्ष्मता प्रतीत होती जायगी। ईश्वरीय महिमा अगम्य अपार है इसने किस २ भाव से वैदिक शब्दों का वर्णन किया है। यह सदा अन्वेषणीय है क्योंकि मनुष्य की उत्पत्ति केवल ज्ञानवृद्धि और जिज्ञासा के लिये ही हुई है। देखोः—

अव्यय ओङ्कार

ईश्वर वाचक जितने शब्द हैं वे सब ही सलिङ्ग हैं। कोई शब्द स्त्रीलिङ्ग, कोई पुलिङ्ग, कोई नपुंसक है। वेदों में अदिति, भूमि आदि ईश्वर के नाम स्त्रीलिङ्ग, इन्द्र, वरुण आदि पुलिङ्ग और ब्रह्मन् आदि शब्द नपुंसक हैं अर्थात् ये सब शब्द विकारयुक्त हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मन् शब्द ले लो इस के रूप इस प्रकार होंगे। ॥

१—ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि।
२—ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि।
ब्रह्मणा, ब्रह्मभ्याम्। ब्रह्मभिः। इत्यादि।

देखते हो। ब्रह्मन् शब्द के भी रूप बदलते जाते हैं। इस प्रकार जितने ब्रह्मवाचक शब्द हैं वे विकार युक्त हैं। परन्तु "ओम्" शब्द निर्विकार है। क्योंकि यह अव्यय है। अव्यय से जो विभक्ति आती है उसका लोप हो जाता है[1]। इस हेतु ब्रह्मवाचक 'ओम्' शब्द भी ब्रह्मवत् निर्विकार है। यथाः—

१—ओम्, ओम्, ओम्। २—ओम्, ओम्, ओम्।

१—सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।

अर्थ—तीनो लिङ्गों में सब विभक्तियों में और सब वचनों में जिसका रूप समान हो अर्थात् जिस में विकार न हो उसे अव्यय कहते हैं।

३–ओम्, ओम्, ओम् । ४–ओम्, ओम्, ओम् ।
–५ ओम्, ओम्, ओम् । ६–ओम्, ओम्, ओम् ।
७–ओम्, ओम्, ओम् । हे ओम्, हे ओम्, हे ओम्

तुम देखते हो कि ओम् शब्द के रूप नहीं बदलते । इस से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मवत् यह शब्द भी निर्विकार है। परन्तु ब्रह्म–वाचक अन्य शब्द विकार संयुक्त हैं । इस हेतु यह "ओम्" शब्द सर्व श्रेष्ठ है । इस हेतु ईश्वर का यही यथार्थ नाम है । इसी हेतु ब्रह्मवाचक जितने अन्य नाम हैं । वे प्रायः अनेकार्थक हैं । परन्तु ओम् नहीं । उदाहरण के लिये "ब्रह्मन्" शब्द को ही देखो यह वेद, ब्राह्मण, ब्रह्मा, तप, आदि अर्थ में आता है ।

ओम् शब्द का स्वीकार अर्थ

ओम् शब्द का एक अर्थ स्वीकार भी आता है । परन्तु यदि इस अर्थ की उत्पत्ति का अन्वेषण करोगे तो मालूम हो जायगा कि यह अर्थ, ओम् शब्द का, कैसे हुआ । ओम् शब्द यथार्थ में ईश्वर वाचक ही है । यज्ञ में जब ऋत्विक् अन्य ऋत्विक् से प्रेरणा करता है कि अमुक कार्य्य अब करो उस समय वह प्रेरित ऋत्विक् उत्तर में 'ओम्' कहता है । अर्थात् स्वीकार करता है कि मैं इस कार्य्य को आरम्भ करता हूं । अब इसका भाव समझो । तुमने आज कल भी किसी किसी ब्राह्मण को पूजा के समय देखा होगा कि वह कुछ नहीं बोलता । यदि कार्य्य वश बोलना ही पड़ता है तो वह संस्कृत ही बोलता है । भाषा नहीं क्योंकि भाषा बोलना अपवित्रता समझी जाती है । यद्यपि ऋषियों के समय यह भाव तो नहीं था । परन्तु यज्ञ ऐसा पवित्र कर्म्म में जहां तक हो ब्रह्म का ही नाम लेना चाहिये । इस हेतु जिसका उत्तर केवल "हां" अथवा हां करता 'हूं' इस प्रकार हो सकता था उस स्थान में 'हां' अथवा "हां करता हूं" इतना न कह कर केवल "ओम्" शब्द का ही प्रयोग करने लगे थे। इस से दोनों बातें सिद्ध होती थीं। इस प्रकार यज्ञ में यह शब्द स्वीकार अर्थ में आया । पीछे धीरे २ सर्वत्र यह शब्द स्वीकार अर्थ में प्रयुक्त होने लगा । अब तुम समझ सकते हो कि यथार्थ में यह ओम् ब्रह्मवाचक ही है । अब मैं विश्वास करता हूं कि तुम को इस की श्रेष्ठता में सन्देह नहीं रहा होगा । हां हम लोगों को इसकी श्रेष्ठता में अब सन्देह कुछ भी नहीं रहा । और यह भी ज्ञात हुआ कि ईश्वर का यथार्थ नाम यही ओम् है। परन्तु इस का वर्णन

सुनते हुए तृप्ति नहीं होती है इस हेतु हम लोगों पर दया कर और भी इसका वर्णन कीजिये। क्योंकि भगवन्नाम का गुणानुवाद जितना ही कर्णगोचर होगा उतना ही अन्तःकरण पवित्र और मंगल होगा और उस की परम महिमा विदित होती जायगी। इस हेतु पुनः इस को आगे वर्णन करें। एवमस्तु सावधानता से सुनो।

हे जिज्ञासुओ! पूर्व में वर्णन हो चुका है कि प्रत्येक मन्त्र के आदि और अन्त में ओं शब्द का प्रयोग करना आवश्यक है विचार करो कि एक तो वेद के मन्त्र ही पवित्र और दूसरा ईश्वरगुण के वर्णन करने वाले हैं। वे मन्त्र भी ओम् के विना उच्चारित नहीं होते इस से बढ़कर ओम् शब्द की श्रेष्ठता और पवित्रता क्या हो सकती है। और भी तुम देखते हो कि केवल वेद में ही नहीं किन्तु पुराण, तन्त्र और भाषा के जितने जगत् में ग्रन्थ हैं उन में जो जो मन्त्र कहे गये हैं। वे सब ही ओम् के साथ ही हैं। सब मन्त्र के आदि में ओम् शब्द का प्रयोग देखोगे। इस हेतु इस की सर्वश्रेष्ठता में अणुमात्र सन्देह नहीं। आगे इसी विषय का वर्णन संक्षेप से करता हूं। सुनो।

मन्त्र के आदि अन्त में ओं शब्द

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्तेच सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतंपूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते॥ मनु० २। ७४॥

[ब्रह्मणः] वेद के प्रत्येक मन्त्र की [आदौ] आदि में [अन्ते+च] और अन्त में [प्रणवम्] प्रणव=ओंकार को [कुर्यात्] करे अर्थात् जब वेद मन्त्र पढ़ना हो तो मंत्र के आदि अन्त में ओम् शब्द का उच्चारण करता जाय [पूर्वम्] जिस वेदपाठी ने प्रथम ओम् शब्द का उच्चारण नहीं किया उसका [अनोंकृतम्] ओंकार रहित अध्ययन [स्रवति] बिल्कुल नष्ट हो जाता है [परस्तात्+च] और जिस ने पश्चात् ओंकार का उच्चारण नहीं किया [विशीर्यते] उसका भी अध्ययन विशीर्ण हो जाता है अर्थात् मन्त्र के अध्ययन के आदि अन्त में ओम् शब्द का उच्चारण अवश्य करे यह विधान है। यही भाव गोपथ ब्राह्मण का भी है।

न माममनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुः। यदि वदेयुरब्रह्म स्यात्। गोपथ प्रपाठक १। २३।

यहां सम्बाद रूप से वर्णन है। विद्वानों से ओंकार कहता है कि (माम्) मुझ को (अनीरयित्वा) न उच्चारण कर (ब्राह्मणाः) ब्रह्म जो वेद उसके पढ़ने वाले वा ज्ञाता जन (ब्रह्म) वेद को (न) नहीं (वदेयुः) पढ़ें (यदि) यदि (वदेयुः) पढ़ें तो (अब्रह्म स्यात्) उनका वह पढ़ना अवेद होवे। अर्थात् ओंकार विना वेदाध्ययन सर्वथा निषेध है। यही आशय छान्दोग्योपनिषद का है। यथाः—

तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृणानि । एवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णा । ओङ्कार एवेदं सर्वम् । ओङ्कार एवेदं सर्वम् । छा. उ. २ । २३ । ३ ।

[तद्+यथा] ओङ्कार की व्यापकता का दृष्टान्त द्वारा दर्शाते हैं। जैसे [सर्वाणि] सब [पर्णानि] पत्ते [शंकुना] पर्णनाल से [संतृणानि] सम्बद्ध हैं अर्थात जैसे वृक्ष के सब पत्र वृक्ष सम्बन्धी नाड़ी से बंधे हुए हैं [एवम] वैसे [ओङ्कारेण] ओङ्कार से [सर्वा+वाग] सम्पूर्ण वेदवाणी [संतृण्णा] सम्बद्ध है [ओङ्कारः+एव+इदं+सर्वम्] ओङ्कार वाच्य ब्रह्म ही सब कुछ है इत्यादि। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि आदि अन्त में ओंकार का उच्चारण करना परम आवश्यक है। श्री कृष्ण जी गीता में कहते हैं कि:—

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदान तपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ गीता २७। २४

[तस्मात्] इस हेतु [ओम्+इति] ओम् इस पद का [उदाहृत्य] उच्चारण कर [ब्रह्मवादिनाम्] ब्रह्मवेत्ता पुरुषों की [विधानोक्ताः] विधि पूर्वक [यज्ञ दान तपः क्रियाः] यज्ञ दान और तपस्यादिक सकल क्रियायें [प्रवर्तन्ते] होती हैं अर्थात् ओङ्कार सहित ही ब्रह्मवादियों के सकल कर्म होते हैं।

आज कल भी तुम ब्राह्मणों को कर्म करवाते हुए देखते होगे कि सब कर्म के आदि में वे ओम् शब्द का उच्चारण करते हैं। अन्त में भी ओम् शब्द का उच्चारण कर कर्म की समाप्ति करनी चाहिये। परन्तु अन्त में ओम् उच्चारण

की विधि को भूल गये हैं, जो कोई जानते वे करते करवाते हैं। एक बात का यहां स्मरण रक्खो कि जब से शूद्रों को वेद पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना निषेध किया है तब से आधुनिक ब्राह्मण शूद्रों को कर्म करवाने के समय ओम् की जगह "नमः" शब्द का व्यवहार करते हैं क्योंकि शूद्रों को ओम् के अनधिकारी मानते हैं। परन्तु तुम स्मरण रक्खो कि ओम् यह ब्रह्म का प्रिय नाम है इस से किसी को वञ्चित नहीं रखना चाहिये अर्थात् चाण्डाल को भी ओम् शब्द सुनाओ कदाचित् इस शिक्षा से वह उत्तम आचरणवान् होजाय और यह भी स्मरण रक्खो कि जब ओम् शब्द को गुप्त करने लगे तब से ही अन्य २ शब्द की रटना चली है।

जीवन के आदि अन्त में ओम् शब्द का विधान

पूर्वोक्त उदाहरणों से तुम लोगों को विदित हुआ होगा कि प्रत्येक मन्त्र के प्रत्येक कर्म के आदि अंत में ओम् शब्द का उच्चारण करना आवश्यक है। परन्तु इतना ही नहीं किंतु इस जीवन के आदि अन्त में भी ओम् शब्द का ही विधान है देखो जब पुत्री वा पुत्र का जन्म होता है । तब प्रथम नाड़ीछेदन आदि विधि कर तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला के सोने की शलाका से बालक के जीभ परः—

ओ३म्

यह अक्षर लिख देने की विधि है यथाः—

जातरूपेण वाऽऽदाय कुमारस्य मुखे जुहोति मेधान्ते मित्रावरुणावित्थतयर्चा सदसस्पति मद्भुतंच।

गोभिलीय गृह्यसूत्र सूत्रप्रपाठक २ । कण्डिका । ७ । नियम २० ।

भाव इस का यह है कि सुवर्ण शलाका से कुमार के मुख में "मेधान्ते मित्रा वरुणौ" और "सदसस्पति मद्भुतम्" इन दोनों ऋचाओं से मधु और घृत देकर चटावे। इत्यादि जातकर्म विधि देखो।

अर्थात् जन्म लेते ही बालक को ओम् शब्द कहा जाता है और यही जीवन का आदि है। मरण के समय में भी ओ३म् शब्द के उच्चारण की विधि पाई जाती है प्रथम यजुर्वेद देखोः—

वायुरनिल ममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर। यजु० ४०। १५।

अर्थः—(क्रतो) हे कर्म करनेवाले जीव ! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) ओ३म् नाम वाच्य ईश्वर का (स्मर) स्मरण कर (क्लिब) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर । हे जीव ! पुनः तू यह विचार कर कि मेरा (वायुः) वायु अर्थात् लिङ्ग शरीर (अमृतम्) अमृतस्वरूप (अनिलम्) सूत्रात्म ब्रह्म को प्राप्त हो (अथ) अनन्तर (इदम्+शरीरम् , यह भौतिक शरीर (भस्मान्तम्) अग्नि में भस्म स्वरूप हो जाय ।

प्रश्नोपनिषद् में सत्यकाम नामक एक कुमार ने पिप्पलाद महर्षि से जिज्ञासा की है कि हे भगवन् ! मरणकाल में जो मनुष्य ओङ्कार का ध्यान करता है वह किस लोक में प्राप्त होता है। इस प्रश्न के उत्तर बहुत प्रकार से वर्णन करते हुए अन्त में पिप्पलाद ने कहा है किः—

तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजर-
ममृत मभयं परञ्चेति । प्रश्न ५ , ७ ॥

ओङ्काररूप आश्रय से वह विद्वान् उसको प्राप्त करता है जो शान्त, अजर, अमर, अभय और पर है अर्थात् जो कोई ओ३म् का ध्यान करता हुआ प्राण त्यागता है वह साक्षात् ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है। श्रीकृष्णजी ने भी यही कहा है ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यःप्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्। गीता। ८। १३ ।

ब्रह्मप्राप्तिसाधक ओङ्कार अक्षर का उच्चारण करता हुआ और तद्वाच्य ब्रह्म का ध्यान लगाता हुआ जो कोई इस शरीर को त्याग कर प्रस्थान करता है वह परमगति को प्राप्त होता है । इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जिन से सिद्ध है कि जीवन के आदि अन्त में भी ओङ्कार का ही विधान है इस विधि की सूक्ष्मता

के ऊपर ध्यान दो ईश्वर ही इस सृष्टि का आरम्भ करने वाला है और अन्त करने वाला भी वही है इस हेतु इस ब्रह्माण्ड के आदि अन्त में रहने वाला वही है यद्यपि प्रकृति पुरुष भी रहते हैं तथापि ईश्वर के ही आश्रित ये सब रहते हैं अतः प्रधानता ईश्वर की ही है। अतः प्रत्येक शुभ कर्म के आदि अन्त में वही स्मरणीय है। शास्त्र का एक नियम है कि उपक्रम (आरम्भ) और उपसंहार (समाप्ति) एक ही होनी चाहिये। सो वेद का आरम्भ अन्त का एक ही उद्देश है। अतः प्रत्येक मन्त्र के आदि अन्त में ओम् का विधान है।

योग और ओम् शब्द

हे तत्त्वजिज्ञासुओ ! अब योगशास्त्र के प्रमाण सुनो। योगी लोग तत्त्ववेत्ता होते हैं। इस हेतु इनका कथन सर्वथा विश्वसनीय और आदरणीय है। योगिराज पतञ्जलि अपने योगशास्त्र में कहते हैं:—

तस्य वाचकः प्रणवः, योगसू० । १ । २७ ॥

(तस्य) उस ईश्वर का (वाचकः) बोधक शब्द (प्रणवः) ओंकार है। अर्थात् सब पदार्थ का नाम होता है तद्वत् ईश्वर का भी कोई नाम अवश्य होना चाहिये वह नाम "ओम्" ही है। इसी हेतु योगी याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि—

अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ।
तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाऽऽहूतः प्रसीदति ॥

जो ब्रह्म अदृष्टविग्रह अर्थात् अदृश्य है इन इन्द्रियों से जो देखा नहीं जाता। जो भाव मात्र से गृहीत होता है और मनन के द्वारा जिस का परिचय होता है। उसका ओंकार नाम है। इस नाम से आहूत होने पर वह प्रसन्न होता है। पुनः—

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ योगसू० । १ । २८ ॥

(तज्जपः) उस ओम् नाम द्वारा ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जान इस 'ओम्' शब्द का जप करे और (तदर्थभावनम्) इस के अर्थ का विचार करे अर्थ के विना जप करना व्यर्थ है। इस हेतु ओम् शब्द के जितने अर्थ हैं उनके भाव को विचारता हुआ ईश्वर की महिमा का अवलोकन अपने मन

में करे । इस प्रकार प्रणव को जपते हुए और प्रणव के अर्थभूत ईश्वर का चिन्तन करते हुए योगी का चित्त एकाग्र होजाता है । और तदनन्तर ईश्वर की महिमा भी ज्ञात होने लगती है । यद्यपि जप और ईश्वरभावना का एक काल में होना संभव नहीं तथापि प्रथम तो ईश्वर की भावना करे पश्चात् ओम् का जप करे यही क्रम है । अथवा ईश्वर की परम विभूति का मनन करना ही जप है । पुनः २ एक शब्द के उच्चारण मात्र से कुछ लाभ नहीं । व्यास जी कहते हैं:—

स्वाध्यायाद् योग मासीत योगात्स्वाध्याय मामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ॥

स्वाध्याय नाम वेद का है । क्योंकि प्रतिदिन पढ़ने का ग्रन्थ वेद ही है । उस वेद के अध्ययन के पश्चात् ही योग करे । और योग के द्वारा वेद के परम तात्पर्य का विचार करे । इस प्रकार स्वाध्याय और योग दोनों की सम्पत्ति से ईश्वर प्रकाशित होता है। इससे सिद्ध हुआ कि केवल योग ईश्वर के साक्षात्कार में कारण नहीं । किन्तु इस के साथ स्वाध्याय भी अपेक्षित है। जो साधक वेद और शास्त्रों के श्रवण मनन निदिध्यासनादि व्यापार न करके और ओम् के यथार्थ तात्पर्य्य को न समझ के केवल । 'ओम्' शब्द के जप में ही लगे हुवे हैं वे कदापि उस के फल को प्राप्त नहीं होंगे । इस हेतु हे जिज्ञासुओ ! प्रथम वेदों के द्वारा ईश्वर की महिमा को जानने के लिये पूर्ण प्रयत्न करो पश्चात् ओम् शब्द का जाप करोगे तो निःसन्देह फलभागी होगे । यही भाव योगी पतञ्जलि जी का है इस प्रकार ओम् की भावना से क्या २ लाभ होता है सो आगे कहते हैं:—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाऽभावश्च ।१।२९॥

(ततः) उस पूर्वोक्त ओम् के जप और भावना से (प्रत्यक्चेतन×) अन्तःकरण में स्थित चेतन रूप आत्मा का (अधिगमः+अपि) साक्षात्कार भी होने लगता है । (च) और (अन्तरायाऽभावः) वक्ष्यमाण अन्तराय= विघ्नों का अभाव होता है । अर्थात् जब साधक ओम् के सम्पूर्ण तात्पर्य्य को जान जप करता है । तब प्रथम तो जीवात्मा का साक्षात् बोध होने लगता है । क्योंकि जीवात्मा के बोध के बिना ईश्वर में विश्वास भी नहीं हो सकता

पुनः वह योग क्या करेगा । सो इस ओम् शब्द के पुनः पुनः मनन करने से जीवात्मा की सत्ता साक्षात् भासित होने लगती है । और तब योग विघ्नकारी समस्त क्लेशों का क्षय हो जाता है । वे विघ्न ये हैं यथाः—

व्याधि स्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याविरतिभ्रान्ति दर्शनाऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥

योग सूत्र १ । ३०

अर्थ—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, और अनवस्थितत्व ये नौ (चित्त विक्षेपाः) चित्त के विक्षेप हैं इस हेतु यही नौ (अन्तरायाः) योग के विघ्न हैं । अर्थात् इन सबों के होने से ही प्रमाणादि वृत्तियां उत्पन्न होकर चित्त को विक्षिप्त कर देती हैं यदि इन के अभाव हों तो चित्त स्थिर हो जाता है ।

व्याधि—धातु-रस-करण का वैषम्य अर्थात् वात, पित्त, कफ संज्ञक तीनों धातुओं में से किसी एक धातु का कोप होकर न्यूनाधिक्य हो जाना धातु वैषम्य और भुक्त पीत (खाये पीये) अन्न जल का सम्यक्-प्रकार परिपक्व न होना रस वैषम्य और नेत्रादि इन्द्रियों का मन्द मध्यम होजाना करण वैषम्य कहा जाता है । इस धातु रस-करण के वैषम्य का नाम व्याधि है ।

स्त्यान—चित्त की अकर्म्मण्यता अर्थात् इच्छा होने पर भी किसी कार्य्य करने की क्षमता (सामर्थ्य) न होने का नाम स्त्यान है ।

संशय—मैं योग साध सकूंगा या नहीं अथवा यह योग रूप कार्य्य सिद्ध होगा कि नहीं । इस प्रकार दो कोटियों का विषय करने वाला जो ज्ञान वह संशय है ।

प्रमाद—समाधि के साधनों का अभावन अर्थात् समाधि के साधनों में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति के अभाव का नाम प्रमाद है ।

आलस्य—शरीर और चित्त के गुरुत्व से प्रवृत्ति का अभाव । गुरुत्व नाम भारीपन का है । शरीर का भारीपन कफ के भारीपन से होता है और चित्त का भारीपन तमोगुण के आधिक्य से होता है ।

अविरति—विषेन्द्रिय के संयोग से चित्त के विषय में तृष्णा होने से वैराग्य के अभाव का नाम अविरति है।

भ्रान्तिदर्शन—विपर्य्य ज्ञान अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य प्रकार का ज्ञान।

अलब्धभूमिकत्व—किसी प्रतिबन्धक वश में योग भूमिका का लाभ न होना।

अनवस्थितत्व—किसी एक योगभूमिका का कथञ्चित् लाभ होने पर भी उस में चित्त की निरन्तर स्थिति का अभाव अर्थात् किसी योग की अवस्था का लाभ होने से यदि उस में ही कृत कृत्य मान लेगा तो समाधि के अलाभ से चित्त स्थिर नहीं होगा क्योंकि समाधि के लाभ से ही चित्त स्थिर होता है ऐसे नहीं। एवञ्च समाधि के अलाभ से जो चित्त की अस्थिरता वही अनवस्थितत्व पद का अर्थ है। यह फलित हुआ। ये पूर्वोक्त नौ ही चित्तविक्षेप, योगमल योगप्रतिपक्ष योगान्तराय नामों से कहे जाते हैं। केवल येही नव योग के अन्तराय नहीं हैं किन्तु इन नवों के होने से अन्य भी प्रतिबन्धक उपस्थित होते हैं इस आशय से सूत्रकार आगे का सूत्र कहते हैं।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसह भुवः।
सू० । १ । ३१ ।

अर्थ-दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास ये पांचों ही [चित्त विक्षेपसहभुवः] पूर्वोक्त चित्त के विक्षेप के साथ ही होने वाले हैं। अर्थात् पूर्वोक्त चित्त विक्षेप के होने से ये पांच अन्य प्रतिबन्धक भी उपस्थित होजाते हैं।

दुःख-जिसेक सम्बन्ध होने से पीड़ित पुरुष उस की निवृत्ति के लिये यत्न करते हैं यह दुःख कहा जाता है। सो यह दुःख आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से तीन प्रकार के हैं।

दौर्मनस्य—अभिलषित पदार्थ विषयक इच्छा की पूर्ति न होने से जो चित्त में क्षोभ उत्पन्न होता है। उसको दौर्मनस्य कहते हैं।

अङ्गमेजयत्व–शरीर के प्रत्येक अङ्ग में कम्प का होना।

श्वास–इच्छा से विना ही बाह्य वायु का नासिका में अन्तर प्रवेश होना।

प्रश्वास–इच्छा से विना ही अन्तर (भीतर की) वायु का बाहर निकल जाना। ये पांचों ही विक्षिप्तचित्तवाले पुरुष को होते हैं। और समाहित चित्तवाले योगी को नहीं होते। अतः ये चित्तविक्षेप-सहभू कहे जाते हैं। इस प्रकार ओङ्कार के जप और भावना से लाभको वर्णन करते हुए विघ्नों के नाश के लिये पुनः उपसंहार में उसी ओङ्कार का उपदेश करते हैं यथाः–

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः। योगसू० १।३२॥

अर्थः–(तत्प्रतिषेधार्थम्) उन पूर्वोक्त विघ्नों के विनाश के लिये (एकतत्वाभ्यासः) एक तत्त्व जो ओम् है उस का अभ्यास करे। हे जिज्ञासुओ? देखो योगी पतञ्जलि ने ओम् की कितनी महिमा गाई है। इस के जप और उपासना से अखिल विघ्नों के प्रशमन होते हैं। इस प्रकार तुम किस नाम का वर्णन पाते हो? इस में संशय नहीं कि इस नाम की भी महिमा अगम अपार है।

पुराण और ओम् शब्द

आज कल सब पुराणों में श्रीमद्भागवत, देवीभागवत और विष्णुपुराण, श्रेष्ठ विश्वसनीय पवित्र पाठ्य माने जाते हैं इन में से कतिपय प्रमाण सुनो–

हिरण्यगर्भो देवानां मन्त्राणां प्रणव स्त्रिवृत्।
अक्षराणां मकारोऽस्मि पदानि छन्दसा महम्॥
श्रीमद्भागवत। ११। १६। १२॥

अर्थ–देवों में हिरण्यगर्भ और मन्त्रों में त्रिवृत् अर्थात् अकार, उकार मकार युक्त (प्रणवः) ओङ्कार अक्षरों में अकार और वैदिक छन्दों में पद सर्वोत्तम है। यहां अन्य विषय को त्याग ओङ्कार के ऊपर ध्यान दो। श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं कि हे उद्धव? मन्त्रों में सर्व श्रेष्ठ मन्त्र "ओम्" ही है। अब विचार करने का स्थान है। यहां पुराण के अन्य जितने "कृ-

ष्णायनमः" "विष्णवे नमः" "शिवाय नमः" "भगवत्यै नमः" गणेशाय नमः इत्यादि मन्त्र हैं इन को मन्त्रों में श्रेष्ठ नहीं कहा। किन्तु "ओम्" इस मन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि पुराण भी "ओम्" को ही सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ परमपवित्र परमजाप्य मानता है। इसी हेतु तुम देखोगे कि पुराणों में भी जितने मन्त्र कहे गये हैं। उन के आदि में ओङ्कार ही होगा। ओङ्कार विना कोइ भी मन्त्र नहीं। यदि "कृष्णाय नमः" इत्यादि ही मन्त्र श्रेष्ठ होते तो इस में ओम् जोड़ने की क्या आवश्यकता होती। इस से विस्पष्टतया सिद्ध होता, है कि पुराणों के रचयिता भी ओङ्कार को ही सर्वोत्तम और प्रथम उच्चारणीय परम पवित्र परम शुद्ध मानते हैं जिस के योग से ही अन्य मन्त्र की मन्त्रता (मन्त्रपना) सिद्ध होता है। देखो।

ओं भगवते नरसिंहाय। ७।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय। १८।
ओं नमोभगवते मुख्यतमाय २५ ओं नमो भगवते अकूपाराय। ३०। ओं नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय। भा० ५। अ० १८॥

इत्यादि श्रीमद्भागवत पञ्चमस्कन्ध में देखते हो कि प्रत्येक मन्त्र के साथ ओम् शब्द लगा हुआ है। वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्र—

"ओंनमो भगवते वासुदेवाय"

है। इस के आदि में ही ओम् देखते हो।

ओ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च। भा० १।५।३७
वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः।
वासुदेव-परायोगा वासुदेवपराः क्रियाः। भा०।१।२।२९।

इत्यादि श्लोक के द्वारा परम मन्त्र "ओंनमो भगवते वासुदेवाय" माना

गया है । यह मन्त्र भी ओं विना नहीं इसी हेतु द्वादश स्कन्ध में ओं शब्द का भागवत कितना वर्णन करता है सो देखोः–

समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते । ३७ ।
यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यात्य पुनर्भवम् । ३८ ।
ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ।३९ ।
स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ।
स सर्व तन्त्रोपनिषद् वेदवीजं सनातनम् ।४१ ।
तस्य ह्यासंस्त्रयोवर्णाअकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणा नामार्थ वृत्तयः । ४२ ।
भा० १२ । ६ ॥

अर्थ–यहां सूत और शौनक में सम्वाद हो रहा है । शौनकाचार्य पूछते हैं कि हे भगवन् सूत ! व्यास शिष्य पैलादिकों ने वेदों का कहां तक विस्तार किया । इस प्रश्न के उत्तर में सूतजी कहते हैं कि हे ब्रह्मन् शौनक ! जब परमेष्ठी ब्रह्मा ने अपनी चित्तवृत्ति को अवरोधन किया तब उस के हृदयाकाश से एक नाद उत्पन्न हुआ । जो नाद ब्रह्मा की चित्तवृत्ति के रोकने से प्रतीत होने लगा । ३७ । हे ब्रह्मन् ! जिस की उपासना से योगीगण अपने अखिल मल को शुद्ध कर के मुक्ति को प्राप्त होते हैं । ३८ वह नाद अ, उ, म्, तीनों अक्षरों से युक्त "ओम्" स्वरूप में प्रकट हुआ जिस की उत्पत्ति अव्यक्त है और जो स्वयं विराजमान है और जो भगवान् परमात्मदेव ब्रह्म का चिन्ह अर्थात् नाम है । ३९ । हे शौनक ! परमात्मदेव ब्रह्म का साक्षात्वाचक "ओम्" ही शब्द है । वही सर्व मन्त्र और उपनिषद् और वेदों का बीज है । वही सनातन है । ४१ । इसके अ आदि तीन वर्ण हैं । जिनका अर्थ तीनों गुण इत्यादि । अतएव पुनः भागवत कहता है किः–

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ॥
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥३४॥
एवंप्रणवसंयुक्तं प्राणमेवसमभ्यसेत्।३५।भा०११।१४।

यहां ओङ्कार का उच्चारण करता हुआ प्राणायाम पूर्वक ब्रह्म के ध्यान का उपदेश है। हृदय में घण्टानाद के समान ओङ्कार का अविच्छिन्नपद्मनालवत् अखण्ड उच्चारण करे। प्राण वायु की सहायता से बारम्बार ओं शब्द का उच्चारण करके पुनः पुनः हृदयके अभ्यन्तर गिराता जाय। इस प्रकार प्रणव संयुक्त प्राण का अभ्यास करे।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतोयोगिनो मनः।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः। ४६।

इस तीव्र ध्यान से योगी का मन शीघ्र शान्ति को प्राप्त होता है और सांसारिक सब भ्रम भी दूर हो जाते हैं। इत्यादि वर्णन भागवत में देखो। विष्णु पुराण भी।

"ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वभाविने।
एतद् जजाप भगवान् जप्यं स्वायंभुवो मनुः॥

इत्यादि श्लोक के द्वारा ओम् को मन्त्रशिरोमणी माना है। हे जिज्ञासुओ! ओम् की महिमा ऐसी ही है। तुम एक बात का ध्यान रक्खो कि भागवत के अन्तिम अध्याय में ओम् को ही परम मन्त्र कहा है। ग्रन्थ का निचोड़, अन्त में ही कहा जाता है। इस हेतु अन्य मन्त्र अवैदिक होने से त्याज्य हैं। एक ओम् ही उपास्य और परम जाप्य है॥

देवी भागवत और ओङ्कार।

न विष्णूपासना नित्यावेदनोक्ता तु कुत्रचित्।
नविष्णुदीक्षानित्याऽस्ति शिवस्यापितथैवच ८८॥
गायत्र्युपासनानित्या सर्ववेदैःसमीरिता।
यया विनात्वधःपातोब्राह्मणस्या स्तिसर्वथा॥ ८९॥

तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि ।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९०
कुर्य्यादन्यन्न वा कुर्य्यादिति प्राह मनुः स्वयम्
विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः ॥ ९१ ॥
शिवोपास्तिपरो विप्रो नरकं याति सर्वथा ॥ ९२ ॥

देवी भागवतद्वादशस्कन्ध अध्याय ॥ ८ ॥

अर्थः—विष्णु की उपासना (नित्य) सनातन नहीं। वेद में विष्णु की उपासना कहीं नहीं कही गई है इस हेतु विष्णु की दीक्षा सनातन नहीं। इसी प्रकार शिव महादेव की भी उपासना और दीक्षा सनातन नहीं ॥ ८८ ॥ किन्तु गायत्री की ही उपासना सनातन है। सब वेदों में इसी की उपासना और दीक्षा कही गई। जिस के विना ब्राह्मण का सर्वथा अधः पात हो जाता है।। ८९। द्विज मात्र के लिये उतने से ही कृतकृत्यता है। अन्य उपासना और दीक्षा की आवश्यकता नहीं। गायत्रीमात्र निष्णात द्विज मोक्ष को प्राप्त होता है। ९०। अन्य उपासना करे अथवा न करे ऐसा स्वयं मनु भगवान् ने कहा है। उस गायत्री को त्याग जो द्विज विष्णु की और महादेव शिव की उपासना और दीक्षा में लगा रहता है। वह सर्वथा नरक में जाता है। इस हेतु सब त्याग गायत्री की उपासना करनी चाहिये। ९१।

तुम को कदाचित् सन्देह उत्पन्न हुआ होगा कि यह तो गायत्री का वर्णन है न कि ओङ्कार का। परन्तु तुम जानते हो कि गायत्री का अनुष्ठान ओङ्कार विना नहीं हो सकता है। यह सर्व सिद्धान्त है इस हेतु गायत्री पद से "ओम् भूर्भुवःस्वः" सहित का ग्रहण है एवं इसी देवी भागवत का प्रमाण भी सुनोः—

ओङ्कारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्री मथवाऽयुतम् ।

दे० भा० ११ । २३ । ३८

इस प्रमाण से गायत्री को ओङ्कार और भूःभुवःस्वः इन तीन व्याहृतियों के साथ ही जपने की विधि है।

हे जिज्ञाओ ! यदि तुम्हें पुराणों में ही श्रद्धा भक्ति है तथापि ओम् की

ही उपासना करनी चाहिये। देवीभागवत बहुत विस्पष्टरूप से उपदेश दे रहा है कि विष्णु महादेव आदि की उपासना पुण्यजनक नहीं। क्योंकि इन सब की उपासना वेद विहित नहीं। और न ये सनातन हैं। गायत्री ही वेदप्रतिपाद्य है। गायत्री का अर्थ ओम् ही है। ओम् का ही ध्यान करो, हे भारतवासी वैदिकमार्गावलम्बियो! देखो सारे पुराण भी अन्त में क्या उपदेश देते हैं। आओ उस एक ओम् की उपासना स्तुति प्रार्थना करें। अन्य सब आडम्बर मात्र है। भगवन्! हम सब को ऐसी सुबुद्धि प्रदान करो जिस से कि तेरी महिमा प्रकाशित हो। और तेरी ही उपासना में लगें।

तन्त्र और ओम् शब्द

सब तन्त्र ग्रन्थों में महानिर्वाणतन्त्र सर्वश्रेष्ठ है इस हेतु इस से ओ-ङ्कार का वर्णन संक्षेप से कहता हूं। यथाः—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरेत्।
एकं पदान्ते ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥
सन्धिक्रमेण मिलितः सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः।
तारहीनेन देवेशि षड्वर्णोऽयं मनुर्भवेत् ॥ १३ ॥
सर्वमन्त्रोत्तमःसाक्षात् धर्म्मार्थकाममोक्षदः।
नात्र सिध्याद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥ १४ ॥
न तिथिर्नच नक्षत्रं न राशिगणनं तथा।
कुलाकुलादिनियमो न संस्कारोऽत्र विद्यते।
सर्वथा सिद्धमन्त्रोऽयं नात्र कार्य्या विचारणा। १५।
बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते
तदा तद्वक्त्रतोलब्ध्वा जन्म साफल्यमाप्नुयात्। १६।
महानिर्वाणतन्त्र तृतीयोल्लासः

अर्थः—प्रथम "ओम्" पद इसके अनन्तर "सच्चिद्" पद इसके अनन्तर "एकं ब्रह्म" पद जोड़ कर मन्त्र बनावे। अर्थात् "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" यह मन्त्र, १२

सन्धि के क्रम से यह मन्त्र सात अक्षरों का होगा। ओम् छोड़ कर छः अक्षरों का होगा।१३ यह सब मन्त्रों में उत्तम है साक्षात् धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्षप्रद है। इस में सिद्धि की अपेक्षा नहीं। यह अरि और मित्रादि के दोषसे दूषित नहीं होता १४ इस में तिथि नक्षत्र और राशिगणना का विचार नहीं, कुल अकुलादि का भी नियम नहीं। इस में संस्कार की आवश्यकता नहीं। यह सर्वथासिद्ध मन्त्र है। इस में कोई विचार करना नहीं चाहिये। १५। अनेक जन्मार्जित पुण्य से यदि सद्गुरु प्राप्त हो। तब उसके मुख से यह मन्त्र सुन कर जन्म की सफलता प्राप्त करो। १६ ॥

चतुर्वर्गं करे धृत्वा परत्रेह च मोदते।
स धन्यः स कृतार्थश्च स कृती स च धार्मिकः॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। १७।
पितर स्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः सह।
गायन्ति गायनीं गाथां पुलकाङ्कितविग्रहाः। १९।
अस्मत्कुले कुलश्रेष्ठो जातो ब्रह्मोपदेशिकः।
किमस्माकं गयापिण्डैः किंतीर्थैःश्राद्धतर्पणैः। २०।
किं धनैः किं जपैर्होमैःकिमन्यैर्बहु साधनैः।
वयमक्षयतृप्ताःस्मः सत्पुत्रस्यास्य साधनात्। २१।
किं कुर्वन्ति ग्रहा रुष्टा वेतालाश्चेटकादयः।
पिशाचा गुह्यका भूता डाकिन्यो मातृकादयः। २३।
महानि०। ३।

अर्थः—जो "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस के भाव को जानता है वह धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों को हाथ में रख कर दोनों लोकों में आनन्दित होता है। वह धन्य है, वह कृतार्थ है। वह कृती है। वह धार्म्मिक है। उसी ने सब तीर्थों में स्नान किया है। वही सब यज्ञों में दीक्षित हुआ है। १७। इस साधक के पितर भी देवताओं के साथ सुख भोगते हैं। और पुलकिताङ्कित विग्रह होकर गाने योग्य गाथा को गाते हैं। १९। पितर लोग किस गाथा

को गाते हैं सो आगे कहते हैं। हमारे कुल में श्रेष्ठब्रह्म का उपदेश करने वाला उत्पन्न हुआ है। अब हम लोगों को गया पिण्डों से क्या प्रयोजन। तीर्थ, श्राद्ध और तर्पण से क्या। २०। धन, जप, होम और अन्य बहुत साधनों से क्या अब हम लोग इस सत्पुत्र के साधन से सर्वदा के लिये तृप्त हो गये। २१। जो इस मन्त्र के भाव को समझता है उसको ग्रह रुष्ट होकरके क्या करेंगे। बेताल, चेटक, पिशाच, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृका आदि रुष्ट होकर क्या करेंगी। २३। इत्यादि। ३२। श्लोक तक इसी का वर्णन करते गये हैं इस के आगे मन्त्रार्थ लिखते हैं।

अकारेण जगत्पाता संहर्ता स्यादुकारतः।
मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थ उदाहृतः। ३२।
सच्छब्देन सदास्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्तितम्।
एकमद्वैतमीशानि बृहत्त्वाद् ब्रह्म गीयते। ३३।
तस्याधिष्ठातृ देवेशि सर्वव्यापि सनातनम्।
अवितर्क्यं निराकारं वाचातीतं निरञ्जनम्। ३४।

अकार से जगत्पाता, उकार से जगत्संहर्ता और मकार से जगत्-स्रष्टा अर्थ है यह प्रणव (ओम्) का अर्थ कहा। ३२। सत् शब्द से सदा-स्थायी, चित् शब्द से चैतन्य, एक शब्द से अद्वितीय और ब्रह्म शब्द से बृहत् अर्थ है। ३३। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे देवेश्वरी! इस "ओंसच्चिदेकं ब्रह्म" मन्त्र का अधिष्ठाता सर्वव्यापी, सनातन अवितर्क्य, निरा-कार, वाचातीत और निरञ्जन ब्रह्म है। ३४। पुनः चतुर्दशोल्लास में इस का वर्णन किया है यथा—

ओंतत्सदितिमन्त्रेण योयत्कर्म्म समाचरेत्।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद्भवेत्। १५३।
जपो होमः प्रतिष्ठाच संस्काराद्यखिलाः क्रियाः।
ओंतत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः। १५४।

किमन्यैर्बहुभिर्मन्त्रैः किमन्यैर्बहुसाधनैः ।
ब्राह्मेणानेन मन्त्रेण सर्वकर्माणि साधयेत् । १५५ ।
सुखसाध्यमबाहुल्यं सम्पूर्णफलदायकम् ।
नास्ति तस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके । १५६ ।
निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरो मनुः ।
ओंतत्सदिति देवेशि तवाग्रे सत्यमीरितम् । १५७ ।
महानिर्वाणतन्त्र । १४ ।

अर्थः—गृहस्थ वा उदासीन जो कोई "ओंतत्सत्" इस मन्त्र से जो कर्म्म करे । वह कर्म्म उसको अवश्य अभीष्टप्रद होगा । १५३ । हे पार्वति ! जप, होम, प्रतिष्ठा और संस्कार आदि अखिल क्रियाएं यदि "ओंतत्सत्" इस मन्त्र से की जांय तो वे अवश्य सम्पूर्ण होती हैं इस में सन्देह नहीं । १५४ । अन्य बहुत मन्त्रों से क्या ? अन्य बहुत साधनों से क्या ? हे पार्वति ! इस ब्राह्म मन्त्र से सब कर्म्म करे । १५५ । हे अम्बिके ! यह मन्त्र सुखसाध्य और छोटा है परन्तु सम्पूर्ण फल देने वाला है । इस हेतु इस महामन्त्र के सिवाय अन्य उपाय नहीं । १५६ । निगम आगम और तन्त्रों के सार का सार "ओंतत्सत्" यह मन्त्र है। हे देवेशि ! तुम्हारे आगे सत्य ही मैंने कहा है । १५७ ।

हे जिज्ञासुओ ! यदि तुम को तन्त्र शास्त्र में ही अधिक प्रीति और विश्वास है तब भी तुम को जानना चाहिये कि तन्त्रशास्त्र भी इसी "ओम्" को सर्व श्रेष्ठ मानता है । और उसी को तन्त्र का सारात्सार बतलाता है । निःसन्देह तन्त्र का रचयिता यह समझता था कि अन्त में वही ब्रह्म मुझे सहायक होगा । अन्य जितना कुछ है वह आडम्बर मात्र है । इस हेतु ब्रह्म से किसी को पृथक् करना उचित नहीं । यह समझ कर अन्य विषय को वर्णन करते हुए भी तन्त्रकर्त्ताओं का अन्तःकरण अपने कर्तव्य से सुपरिचित था । इस हेतु अन्त में यथार्थता की ओर इन को भी आना ही पड़ा । तन्त्रों के देखने से अच्छे प्रकार प्रतीत होता है कि वे लोग भूत, प्रेत, डाकनी, देव, देवी के विश्वासी नहीं थे । वे समझते थे कि ये सब

मिथ्या कल्पित वस्तु हैं । अज्ञानी पुरुषों को फँसाने के लिये आडम्बर मात्र है । देखो । शिव पार्वती भी 'ओम्' की ही महिमा गाते हैं, सम्पूर्ण निर्वाणतन्त्र पढ़ जाओ, आदि अन्त दोनों में 'ओंसच्चिदेकं ब्रह्म' इसी मन्त्र को सत्य कहा है । और यही वैदिक है । यदि तन्त्र अन्य काली दुर्गा आदि को सत्य मानता तो आदि अन्त में उसी का उपदेश करता । परन्तु नहीं किया है इस से सिद्ध होता है कि माहदेव पार्वती जी का भी उपास्य देव "ओंसच्चिदेकंब्रह्म" ही है । और यही उपदेश सब मनुष्यों को भी किया है इस हेतु सब त्याग "ओम्" की ओर आओ । तन्त्र रचयिता मद्यादि पान से सदा डरता था और समझता था कि यह महापाप है । इस हेतु अपने ग्रन्थ में उस का निषेध किया है—

मद्यादि और कुलार्णव तन्त्र ।

कुलार्णव तन्त्र द्वितीय उल्लास में लिखा है ।

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत वै ।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः ॥
मासभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्
लोकोमांसाशिनःसर्वे पुण्यभाजोभन्तु हि
स्त्रीसम्भोगेन देवेशि यदि मोक्षोभवेद् वै
सर्वेऽपि जन्तवोलोके मुक्ताःस्युःस्त्रीनिषेवणात् ॥

अर्थः—मद्यपान से यदि कोई मानव सिद्धि को प्राप्त हो तो मद्यपान करने वाले सब ही पामर सिद्धि को प्राप्त हो जांय । मांस भक्षण मात्र से यदि किसी की अच्छी गति हो तो लोक में सब ही मांस खाने वाले धर्म्मात्मा समझे जांय । हे देवेशि ! स्त्री सम्भोग से किसी को यदि मोक्ष होवे तो सब कोई मुक्त ही हो जांय । इत्यादि कुलार्णव तन्त्र देखो । अन्य तन्त्र में भी वारम्बार मद्यादियों का निषेध आया है इस में सन्देह नहीं कि तन्त्रो में बहुत घृणित विषय वर्णित हैं । परन्तु लोग समझते नहीं तन्त्र में साफ़ लिखा है यह सब महापापजनक है । और बड़ी अज्ञानता है इन कर्म्मों से

महानरक में जाते हैं। ज्ञान बिना कभी मुक्ति नहीं होती इस हेतु यह सब छोड़ कर केवल "ओंसाक्षिदेकं ब्रह्म" की उपासना करे और ज्ञानवृद्धि के लिये सदा प्रयत्न करे। इत्यलम्

नाम और नामी।

हम प्रथम कह चुके हैं कि ओम् शब्द के केवल जपने से, कीर्त्तन करने से और उच्चारण, धारण आदि से कुछ लाभ नहीं। बहुत मनुष्य ऐसा कहते हैं कि जब ब्रह्म का यह पवित्र नाम है तो इस के जाप से फल क्यों नहीं होगा? सुनो शब्द का जितना प्रयोजन है वा शब्द में जितनी शक्ति है उतना ही कार्य्य हो सक्ता है। यदि कोई पुरुष केवल जल जल·········कहता वा जपता रहे तो उस जप से उसके मुंह में पानी नहीं आ जायगा और न उस की पिपासा मिटेगी, अग्नि अग्नि·········जपने से कोई भस्म नहीं होता, खड्ग २ कहने से किसी की जीभ नहीं कटती। सर्प सर्प·········जपने से सांप उसे नहीं डँसता। इससे यह सिद्ध होता है कि संसार के व्यवहार की सिद्धि के लिये पदार्थों का एक एक नाम धरते हैं। यदि नाम न रक्खा जाय तो सभ्य समाज में व्यवहार की सिद्धि नहीं चल सकती। परन्तु जंगली मनुष्यों में और पशु में नाम के विना भी सब कार्य्य चलता है। जब भूख लगी तो किसी को मार कर वा कोई पदार्थ खा लिया प्यास लगी तो जहां पानी मिला वहां जाकर पी लिया इस प्रकार विना नाम के ही उन के व्यवहार चलते हैं। परन्तु सभ्य समाज में नाम की आवश्यकता है। परन्तु तुम अपने ध्यान में इस बात को अच्छे प्रकार रक्खो कि नामी से नाम कदापि बड़ा नहीं। मान लो कि तुम हड़ को जानते हो और उस के गुण भी तुम्हें मालूम हैं। परन्तु उस को तुमने कभी नहीं देखा इस अवस्था में तुम्हारे सामने रक्खी हुई भी हड़ से तुम कुछ भी काम नहीं ले सकते हो। इस हेतु पदार्थ का परिचय प्रथम अवश्य होना चाहिये। परन्तु नाम और परिचय रहने पर भी उस पदार्थ के आन्तरिक गुण न जानने से लाभ नहीं हो सकता। जैसे मुक्ता के गुण न जानने से मनुष्य लाभ नहीं उठा सकता। देखो इसी भारतवर्ष में लोग पृथ्वी पर्वत आदि नाम जानते हैं और उन्हें पहचानते भी हैं परन्तु उन के गुण न जानने से पृथ्वी पर्वतादि से उतना लाभ नहीं उठा

सकते जितना विदेशी लोग उठा रहे हैं। पृथिवी के अभ्यन्तर से कितनी कोयले की खानि निकालते, मिट्टी से कैसे २ स्थायी पात्र बनाते हैं। पर्वत से कितने धातु निकालते। यह तुम प्रत्यक्ष देखो कि विद्युत् को सब कोई जानते थे परन्तु विदेशियों ने इस से कैसा अद्भुत काम लिया है। अग्नि जल सब जानते थे परन्तु रेल नहीं चला सके इन उदाहरणों से विदित होता है कि पदार्थ के आन्तरिक गुण जानने की आवश्यकता है। बालकों को सम्पूर्ण अमरकोश और अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करवाई जाती है यदि उस के समीप कुमुदिनी का फूल रख दिया जाय तो वह नहीं कह सकता कि यह कुमुदिनी है। एक पद नहीं साध सकता वैयाकरण नहीं कहलाता। देखो छोटे बच्चे को। इस के समीप सर्प रक्खो वह उसे हाथ से पकड़ेगा। विष दो वह उसे उठा मुंह में रख लेगा, आग को हाथ से छू देगा। क्यों? ऐसा क्यों? निःसन्देह-वह उन पदार्थों के गुणों को नहीं जानता इस हेतु वह किसी से भय नहीं खाता। इस से यह सिद्ध होता है कि गुण जानने से पदार्थों से लाभालाभ उठा सकता है। नाम से कुछ नहीं हो सकता। इस विषय पर ध्यान दो एक ही पदार्थ के नाम दश भेद से सकते हैं। परन्तु गुण सर्वत्र एकसा है। यदि वह पदार्थ एक ही भूमि में उत्पन्न हो तो गुण में कुछ भी अन्तर नहीं हो सकता परन्तु उसके नाम बहुत हैं इस से यह सिद्ध होता है कि नाम तो कल्पित हैं। परन्तु गुण स्वाभाविक हैं। हम एक पदार्थ का नाम बदल सकते हैं परन्तु ठीक उसी पदार्थ का गुण नहीं बदल सकते। इस हेतु गुण श्रेष्ठ है, नाम नहीं। अतएव व्यवहार के लिये नाम जान उसके गुण का अन्वेषण करना चाहिये।

यदि तुम "बैल" इस नाम को जानते हो परन्तु बैल से कौन २ काम लेने चाहियें इस को नहीं जानते हो तो नाम का जानना बिलकुल व्यर्थ है इसी प्रकार ओं नाम तो तुमने जान लिया परन्तु ओ३म् जिसका नाम है वह कैसा है, कहां रहता, उस से क्या काम लेने चाहियें. वह क्या करता, क्यों उस का नाम लें इत्यादि बात नहीं जानते हो तो नाम रटने से क्या लाभ। औषध कहने से किसी रोग की निवृत्ति नहीं किन्तु उस को ग्रहण करने से इसी प्रकार ओम् जिस का नाम है उसको अपने हृदय में धारण करो पहिचानो, वह किस बात से प्रसन्न रहता है इत्यादि देखो। यदि तुम अपने पिता का

आचार्य्य को प्रसन्न रखना चाहते हो तो उन की आज्ञा माननी आवश्यक है तुम अपने पिता वा आचार्य्य के नाम को तो बराबर जपते रहो परन्तु उन की आज्ञा न मानो तो क्या तुम पर वे पिता आचार्य्य कभी संतुष्ट होवेंगे ? कभी नहीं। तुम्हारे पिता की इच्छा है कि मेरा पुत्र पूर्ण विद्याध्ययन करे, सत्य बोले, शुद्ध आचार रक्खे, छल कपट त्यागे, बड़ों का सम्मान करे, लोक में यशस्वी बने, इत्यादि परन्तु तुम उन में से एक भी न होकर केवल पिता जी के नाम को बड़े प्रेम से जपते और इस के साथ २ उन की शिक्षा से विरुद्ध सब काम करते हो तो क्या इस अवस्था में तुम्हारे पिता जी तुम्हारे ऊपर कदापि प्रसन्न होसकते हैं। निःसन्देह वे तुम से असन्तुष्ट रहेंगे। इसी प्रकार ईश्वर की आज्ञा के अनुसार सब व्यवहार करने से वह प्रसन्न होगा केवल नाम जपने से नहीं उसकी आज्ञा वेद में लिखी हुई है तदनुसार काम करो। यदि तुम उस की आज्ञा का प्रतिपालन करते हो तो निर्भय रहोगे। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है:-

यदेव विद्यया करोति, श्रद्धयोपनिषदा
तदेव वीर्य्यवत्तरं भवति छां० उ० १। १। १०॥.

श्रद्धा पूर्वक ज्ञान से जो कर्म किया जाता है वही अधिक फल देने वाला होता है। वहां ही उषस्ति चाक्रायण की आख्यायिका देखो। श्री कृष्ण जी कहते हैं कि:-

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

....

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः॥

इत्यादि ज्ञान की प्रशंसा सर्वत्र विद्यमान है। इस हेतु सर्वदा गुण पहिचानने का प्रयत्न करना चाहिये।

वेद में ईश्वर की कोई भी ऐसी आज्ञा नहीं पाई जाती कि जिस में केवल नाम रटने की विधि हो इस हेतु नाम रटने की प्रथा सर्वथा त्याज्य है। और केवल नाम के प्रताप से ही जो अजामिल आदिक महापापी को मुक्ति मिलने की आख्यायिका है सो भी वेद और शास्त्र विरुद्ध होने से

अविश्वसनीय है। जब से वैदिकधर्म्म संसार से उठगया तब से ही केवल नाम रटने की भक्ति चली है। इस से देश को बड़ी हानि हुई, देश से विद्या चली गई, अन्वेषणाशक्ति बिल्कुल नष्ट होगई, ईश्वर के गुण भूल गये। यथार्थ में देखो तो भारतभूमि ईश्वरविमुख और महामूर्ख बनगई। इस हेतु नाम रटने की प्रथा को उठाकर गुण की ओर मनुष्यों को ले चलो। तब ही मनुष्य मात्र का कल्याण है। इससे ज्ञात हुआ कि केवल नाम मात्र के जपने वाले अज्ञानी हैं। उन्हें बोध करवाना चाहिये। देखो महर्षि पतञ्जलि क्या कहते हैं।

तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगसू० १। २८॥

(तदर्थभावनम्) उस ओङ्कार के अर्थों की भावना ही (तज्जपः) उस का जप है। ओंकार के अर्थ क्या हैं? इस के अर्थ वेही हैं जो ब्रह्म के गुण हैं। परन्तु ब्रह्म के गुण क्या और कितने हैं? इसका उत्तर सम्पूर्ण वेद शास्त्र हैं इस हेतु ब्रह्म के गुण जानने के लिये प्रथम इस प्रकृति का अध्ययन करो उस की कुशलता इस प्रकृति में देखो और विचारो कि वह कैसा गुणवान् होसकता है। तदनन्तर उस का साक्षात्कार करो। अन्यथा उस का जप करना व्यर्थ है। महर्षि पतञ्जलि इस सूत्र में विस्पष्ट रीति से कहते हैं कि अर्थ सहित ओंकार का विचारो। प्राचीन ग्रन्थ में एक भी प्रमाण केवल नाम रटने का नहीं मिलेगा। हां आधुनिक ग्रन्थ जितने हैं उन में तो इस का बड़ा माहात्म्य गाया गया है। परन्तु वे सब वेद विरुद्ध और आधुनिक हैं इस हेतु त्याज्य हैं यदि अजामिल आदि की कथा सत्य हो तो ईश्वर अन्यायी, स्वार्थी, प्रजाघातक, स्वकृत-नियम-भञ्जक आदि साधारण मनुष्यवत् ही ठहरेगा क्योंकि यदि अजामिल चोर था और उसको ईश्वर ने दण्ड नहीं दिया तो जिस का धन वित्त लूटा गया उस के लिये अन्याय किया गया और ईश्वर ने अपने राज्य में चोरी बढ़ाई, चोरों को सहायता दी इस में ईश्वर केवल अन्यायी ही नहीं किन्तु प्रजाघातक, कुकर्म्मप्रचारक आदि भी हो जायगा किंतु उसका नियम है कि चोर, मद्यपायी, और परस्त्रीगामी इत्यादि को दण्ड दो। यदि अजामिल आदिक में ये सब दोष रहने पर भी उन सबों को कुछ दण्ड न मिला तो स्वयं ईश्वर ने एक साधारण स्वार्थी राजा के समान अपने नियम को भग्न किया फिर जैसे आत्मश्लाघी (खु-

खुशामदी) मनुष्य केवल अपनी प्रशंसा के लिये सबों को प्रसन्न रखना चाहता है। वा जो उस की प्रशंसा करे उस के दोषों को न देखकर उस पर प्रसन्न होजाता है वा किसी ने कह दिया कि वह तो आप का सदा नाम जपा करता है इतना सुन वह झट उस पर मोहित होजाय परन्तु यह न देखे कि वह कैसा उपद्रवी कैसा अपराधी कैसा पापी है इत्यादि तद्वत् ईश्वर ने भी गुण दोष न विचार झट अजामिल आदि को अपनी शरण में लिया। परन्तु तुम जानो ईश्वर ऐसा कदापि नहीं करसकता क्योंकि वह न्याय करने वाला है, उस में किंचित् भी पक्षपात नहीं। वह अपनी आज्ञा का भंग कदापि नहीं कर सकता इस हेतु अजामिल आदिक की कथा बिलकुल वेदविरुद्ध है। इस हेतु सर्वथा त्याज्य है।

अन्य नाम।

पूर्वोक्त लेख से यह सिद्ध है कि ब्रह्म का मुख्य नाम ओम् है। अन्य नाम नहीं इस हेतु प्रातः सायंकाल उठ कर ओम् नाम द्वारा ईश्वर की महिमा का विचार करें और उस की आज्ञा का स्मरण कर सम्पूर्ण पापों से निवृत्त रहें। बहुत आदमी इस पवित्र ओम् नाम को त्याग अन्य २ नाम का स्मरण करते हैं। सो ठीक नहीं करते ओम् नाम ही अर्थ सहित ध्यातव्य है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठम् एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ कठ०

ओङ्कार शब्द की सिद्धि।

इस प्रकरण को भी देखो ओङ्कार की श्रेष्ठता मालूम हो जायगी "ओम्" शब्द की सिद्धि शब्द-तत्त्ववित् पाणिनि ने "अव" धातु से माना है "अव" धातु के रक्षादिक अनेक अर्थ हैं। "अवतेष्टिलोपश्च" इस उणादि सूत्र से "अव" धातु से "मन" प्रत्यय होता है। और मन् प्रत्यय के "टि" का लोप भी हो जाता है। तब "अव+म्" ऐसी स्थिति होती है। तब। ज्वर, त्वर, स्रिव्य, विमवामुपधायाश्च। ६। ४। २०॥ इस सूत्र से "अव" की जगह ऊठ आदेश हो कर "ऊ+म" स्थिति होती है। तब गुण होकर "ओम" शब्द बनता है। यह वैयाकरणभूषण पाणिनि का सिद्धान्त है? धर्मशास्त्रकार शिरोमणि मनु जी कहते हैं:—

अकारञ्चाप्युकारञ्चमकारञ्चप्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च । म०२।७६॥

भाव यह है कि "अ+उ+म्" इन तीन शब्दों से ओम् शब्द की सिद्धि होती है । यही सिद्धान्त प्रायः उपनिषदों का भी है । गोपथ-ब्राह्मण में:—

"ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं किं नामाख्यातं किं लिङ्गम्" "को धातुरित्यापूऌ धातु रवतिमप्येके" । प्रपाठ १ । कंडि० २६ ॥

ओम् शब्द "आपूऌ" धातु से बनता है और किसी आचार्य के मत से "अव" धातु से भी अर्थात् गोपथ ब्राह्मणानुसार "आपूऌ" और "अव" इन दोनों से ओम् सिद्ध होता है । माण्डूक्योपनिषद् का ऐसा सिद्धान्त प्रतीत होता है कि यह दो धातु और एक उपसर्ग से ओम् शब्द की सिद्धि मानती हो । "अप" से अ, "उत्" उपसर्ग से उ, और "मा" वा "मि" धातु से म लेकर ओम् शब्द की सिद्धि करती है यथाः—

अकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद । ९ ।

ओङ्कार शब्द में अकार प्रथम मात्रा है । वह आप् धातु से है ।

उकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वा । १० ।

द्वितीय मात्रा उकार है जो उत् शब्द के उकार से है ।

"मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा"

तृतीय मात्रा मकार है जो मा धातु से बना है ।

इत्यादि भाव इस का प्रतीत होता है ।

ओङ्कार की सिद्धि में सन्देह होता है कि आचार्यों में परस्पर विरोध क्यों ? । समाधान । यथार्थ में विरोध कुछ नहीं है । पाणिनि ने यह कहीं नहीं कहा है कि केवल "अव" धातु से ही ओङ्कार की सिद्धि होती है ।

उन के ही व्याकरण के अनुसार अव, आप्, आदि सब धातु से सिद्ध हो सकता है। क्योंकि पाणिनि ने लिखा है कि:—

"पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" ६ । ३ । १०९ ॥

इस सूत्र से सब सिद्ध हो जाता।

मनु प्रभृति आचार्य्यों ने जो अ+उ×म् इन तीन अक्षरों से ओम् की सिद्धि मानी है और कहा है कि तीनों वेदों में से ये तीन अक्षर दूहे गये हैं इस का भी भाव कुछ कठिन नहीं। विचार कर देखो।

मैंने अभी कहा कि ब्रह्म जीव और प्रकृति क्रमशः अ+उ+म् का अर्थ है। ऋषियों ने वेदों में इन ही तीन पदार्थों को पाया। पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश यह सब प्रकृति की विभूतियां हैं। चेतन जीव है। ईश्वर सब का कर्ता धर्ता है। देखो, इन तीनों को छोड़ चौथा नहीं मिलेगा। इसी हेतु कहा है कि तीनों वेदों से तीन अक्षर दूहे गये हैं। अर्थात् वेदों का तात्पर्य इन ही तीनों से है। तीनों की ही विभूति सारी सृष्टि है। यहां तुम को एक रहस्य कह कर इस प्रकरण को समाप्त करना चाहते हैं।

तीन को किसी अङ्क से गुणा करो। गुणा करने से जोड़ में जितनी संख्याएं आवें उन को जोड़ दो जोड़ कर जितना होगा वह अवश्य ही तीन से बांटा जायगा! शेष कुछ भी नहीं रहेगा, जैसे तीन ३ को चार से गुणा करने पर १२ होगा। बारह में १, और २ संख्या है। जो जोड़ने से तीन होता है वह तीन से विभक्त हो जायगा इसी प्रकार ३×५=१५ ॥ १+५=६ ॥ ६÷३ । ३×६=१८ । १+८=९ ॥ ९÷३ । इस प्रकार ३×१२३४५६७८९=३७०३७०३६७ । ३६÷३ इस प्रकार तुम किसी संख्या को ३ तीन से गुणा करो और गुणनफल में जो संख्याएं आवें उन को परस्पर जोड़ो वह अवश्य ही तीन से बांटा जायगा। इस से यह सिद्ध होता है कि जगत् में तीन ही पदार्थ हैं इसी हेतु वेदों में ९, ३३, ९९ । ३३३९ । इत्यादि संख्या की बराबर चर्चा आती है वह सब तीन की ही विभूतियां हैं अर्थात् तीन के ही गुणनफल ९ वा ३३ आदि हैं। यह एक रहस्य है। तीन पदार्थ के अतिरिक्त अन्य पदार्थ नहीं। विस्तार भय से अधिक अब कहना नहीं

चाहता । इतने ही विचारने से ओम् का तत्त्व बहुत कुछ विदित हो जायगा । वेदों के द्वारा ब्रह्म के गुण जान ध्यान करो ।

सब धर्म्मों में ओं शब्द

जगत् भर के जितने प्रसिद्ध धर्म हैं । वे सब ही ओम् शब्द का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते हैं । मुसलमान और क्रिस्तान अपनी प्रार्थना के अन्त में "आमीन" जो अङ्गरेज़ी में "AMEN" लिखा जाता है बोलते हैं । यदि उन लोगों से पूछा जाय कि यह शब्द आप के यहां कहां से आया तो वे कुछ उत्तर न दे सकेंगे क्योंकि वे इस शब्द का इतिहास भूल गये । परन्तु तुम स्मरण रक्खो कि जब सब आर्य किसी एक स्थान से वियुक्त हो नाना देश में जा बसे उस समय सब का एक वैदिक धर्म था । धीरे २ बहुत कुछ परिवर्तन हो गया । उसी समय वे आर्य अपने अपने साथ ओम् शब्द को भी ले गये थे । तुम जानते हो कि एक देश में ही एक शब्द का उच्चारण भिन्न २ हो जाता है फिर पठन पाठन उस भाषा के न रहने से उच्चारण में बहुत भेद पड़ जाता है इसी नियम के अनुसार एक ओम् शब्द का उच्चारण ओम्, आमीन्, एमेन्, एमन आदि हो गया । परन्तु ये सब शब्द ओम् शब्द के ही विकार हैं । इसी हेतु प्रार्थना के अन्त में मुसलमान और क्रिस्तान आमीन या एमन (AMEN) कहते हैं । आदि में ओम् शब्द कहना इन सब को विस्मृत हो गया ।

जो लोग तिब्बत, चीन और आर्य्यावर्त्त के उत्तरीय पर्वत में रहते हैं और इन देशों में प्रचलित बुद्धधर्म्म के अनुयायी हैं उनका परम पवित्र मंत्र जिसको वे नित्य जपते हैं यह है "ओं मनी पद्मो होम" जिसका अर्थ यह है कि हृदय कमल में ओम् रूप मणि है । इस में स्पष्ट ही ओम् विद्यमान है इस प्रकार विश्व भर में इस ओम् की चर्चा पाई जाती है इस हेतु यह परमात्मा का मुख्य नाम है ।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ॥
श्रद्धां सूर्य्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः,

ऋक १० । १५१. ५ ।

ओ३म्

नाम सिद्धम् ।

ओ३म्

सच्चिदेकं ब्रह्म

इति श्री शिवशङ्करकृते वेदतत्त्वप्रकाशे

प्रथमः समुल्लासः समाप्तः

ओङ्कार निर्णयश्च समाप्तः

॥ ओङ्कार स्तुति ॥

सुखे वा दुःखे वा परिषदि नृणां वाति विजने,
गृहे वा बाह्ये वा गिरि-सुशिखरे वा सुपुलिने ।
दिने वा रात्रौ वा उषसि दिवसान्तेऽथ रमणे,
भजध्वं हे धीराः सुमतिविमला ओं हृदि सदा ॥ १ ॥

अर्थः—सुख में, वा, दुःख में, मनुष्यों की सभा में, वा, निर्जन स्थान में, गृह में, वा बाहर में, पर्वत के सुन्दर शिखर पर, वा, नदी के सुन्दर तट पर, दिन में, वा, रात्रि में, प्रातः काल वा, अतिरमणीय सायंकाल में हे सुमति से विमल धीर विद्वानों ! हृदय में सदा ओ३म् को भजो ॥ १ ॥

रवौ चन्द्रे ज्योतिर्विविध-गण-रम्ये वियति च,
समीरेऽग्नौ भूमा विह निखिल-देहे स्वसुयुते ।
वयं पश्यामस्ते शुभग-महिमानं समुदितम् ।
भजध्वं० ॥ २ ॥

सूर्य में, चन्द्रमा में, और नक्षत्र के विविध गणों से रमणीय आकाश में वायु अग्नि और भूमि में और सुन्दर प्राण संयुक्त अखिल शरीर में हम लोग आप की सुभग महिमा को प्रकाशित देखते हैं । अतः हे सुमति० ॥ २ ॥

स नोबन्धुःपाता भुवन मखिलं यो रचयति,
प्रजानां संहारे पुनरपि सएवाऽति बलवान् ।
तमेकं जानीध्वं सकल-सुखदं दुःख-हरणम् ।
भजध्वं० ॥ ३ ॥

वह हम लोगों का बन्धु और पालक है । जो अखिल भुवन को रचता है । जो प्रजा के संहार में अतिबलवान् है । उसी एक को जानो । वह सब को सुख देने वाला है और दुःख के हरण करने वाला है । अतः हे सुमति० ॥ ३ ॥

इमं देवं रुद्रं गणपति मजं विष्णु मजरं,

सुपर्णं ब्रह्माणं शिव मदिति मीशान मनघम् ।

तमेकं व्याचष्टे बहुविध सुनाम्ना कुशलधीः ।

भजध्वं ॥ ४ ॥

इसी एक देव को रुद्र गणपति, अज, विष्णु, अजर, सुपर्ण, ब्रह्म, शिव, आदिति ईशान, अनघ आदि विविध नाम से विद्वान् लोग व्याख्यान करते हैं । अतः हे सुमति० ॥ ४ ॥

त्वमेकः पूज्योऽसि त्वमिह सदयस्त्वं हितकरः ।

त्वमेको ध्येयोऽसि त्वमसि रमणो योगिहृदये ॥

रमस्व त्वं चित्ते त्वमसि मम वित्तं बहुमतम् ।

भजध्वं० ॥ ५ ॥

हे भगवान् ! तूहीं एक पूज्य है । तूही करुणाकर है तूही हितकारी है । तूही एक ध्येय है । तूही योगियों के हृदय में रमित है । हे भगवान् ! मेरे चित्त में भी विराजमान हो और तूही मेरा बहुमत वित्त है=अतः हे सुमति० ॥ ५ ॥

समाप्तम् ।

तोटक छन्द ।

भज ओम् भज ओम् भज ओम् सततम् ।
यह जीवन है अति अल्पतरम् ॥ १ ॥

यह मन्त्र सुदुर्ल्लभ वेदकृतम् ।
युग चार हुं में ऋषिदेव धृतम् ॥ २ ॥

सब मन्त्र शिरोमणि जाप वरम् ।
मन-शुद्धि-करं भव-भीति-हरम् ॥ ३ ॥

श्रुति तन्त्र पुराण समस्त कहैं ।
बिनु ओम् सब मन्त्र अशुद्ध रहैं ॥ ४ ॥

यह ईश्वर-वाचक नाम नरो ! ।
सब में यह श्रेष्ठ विचार करो ॥ ५ ॥

गिरि-गह्वर में सरिता-तट में ।
वन में जन में सब ही पल में ॥ ६ ॥

ऋषि योगि यती नर कोविद जो ।
करते जप ओम् श्रुति पूजित जो ॥ ७ ।

अब त्याग करो मन संशय को ।
गहि लेहु सुमंगल ओम् पद को ॥ ८ ॥

सुख में दुख में प्रभु को भजियो ।
न कदापि उसे मन से तजियो ॥ ९ ॥

मुख मोड़हुं ना करुणा-कर से ।
प्रिय बान्धव मित्र वही सब से ॥ १० ॥

गति मुक्ति वही धन धान्य वही ।

पितु मातु वही गुरु देव वही ॥ ११ ॥

प्रभु देहि सुबुद्धि प्रदीप वरम् ।

मन पाप कटै बिनसै तिमिरम् ॥ १२ ॥

अवलोकि सकों महिमा सुखदम् ।

दुख मोचन मंगल शान्ति-प्रदम् ॥ १३ ॥

करुणा-कर तू हम पापी सदा ।

दृग पात करो प्रभु लो सुखदा ॥ १४ ॥

शरणागत याचत रक्ष विभो ।

जय ओम् जय ओम् जय नाथ प्रभो ॥ १५ ॥

शिवशंकर ओंकार की शरणम् ।

मन में सुमिरे दुख के [illegible] ॥ १६ ॥

पुस्तक मिलने का पता:—

मैनेजर,

दफ्तर आर्यमुसाफ़िर मेगज़ीन

जालन्धर शहर ॥